वेदान्त केशरी स्वामी निरंजन कृत

जानो फिर मानो

निरंजन बुक ट्रष्ट

वेदान्त केशरी स्वामी निरंजन कृत

जानो फिर मानो



प्रकाशक : निरंजन बुक ट्रष्ट
प्रथम मुद्रण : बुद्ध पूर्णिमा, २००९
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,**
भुवनेश्वर -२ (उड़िसा)
प्रच्छद : बिभु

मूल्य : **रु : ७०**

विषय सूची

भूमिका

संसार में दो प्रकार के पदार्थों की मान्यता है । एक प्राप्त है, तथा दूसरा अप्राप्त है । अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति व प्राप्त की प्राप्ति । एक श्रेय मार्ग तथा दूसरा प्रेय मार्ग । अप्राप्त की प्राप्ति यह प्रेयमार्ग व दूसरा प्राप्त की प्राप्ति जिसे श्रेय मार्ग कहते हैं । प्रेय मार्ग जो अप्राप्त से प्राप्ति का, संसारका मार्ग है । श्रेय मार्ग जो परमात्मा का मार्ग है, प्राप्त से प्रप्ति का मार्ग है । संसार का मार्ग करने का मार्ग है, परमात्मा का मार्ग जानने का मार्ग है । संसार का मार्ग बन्धन व दुःख का मार्ग है । परमात्मा का मार्ग मुक्ति व आनन्द का मार्ग है ।

संसार के मार्ग में करना आवश्यक है, बिना किये पौधे से पत्र, पुष्प, वृक्ष से फल अपने ही बगीचे से प्राप्त नहीं कर सकेंगे । परमात्मा के मार्ग में जानना ही आवश्यक है । करने से जो पदार्थ मिलता है, वह जड़, परिच्छिन्न एवं नाश रूप होता है । परमात्मा में जानना ही पर्याप्त है, क्योंकि वह अखण्ड होने से, जानने की इच्छा वाले से भिन्न नहीं है । इसलिये परमात्मा के लिये किञ्चित् भी करना कर्तव्य नहीं है । ज्ञान द्वारा जो पदार्थ प्राप्त हो जाता है वह प्रथम से ही होता है । जो पदार्थ प्रथम से नहीं होता है उसके लिये कर्म करना आवश्यक होता है ।

कर्म करके प्राप्त करने वाले साधक जानले कि अनित्य कर्म के द्वारा किसी वस्तु की प्राप्ति, विकार, उत्पत्ति संस्कार तथा नाश यही पांच प्रकार का उपयोग होता है । अनित्य कर्म द्वारा नित्य वस्तु आत्मा की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ।

परमात्मा के लिये तो प्राप्ति, विकार, उत्पत्ति, संस्कार तथा नाश रूप किसी भी क्रिया का उपयोग नहीं है । क्योंकि (१) परमात्मा नित्य प्राप्त सब जीवों का अपना सहज सिद्ध स्वरूप है । इसलिये उसकी प्राप्ति करने का सोचना भी पाप रूप है । साधन द्वारा प्राप्ति तो अप्राप्त पदार्थ की ही होती है । (२) निर्विकार परमात्मा में विकार कैसे हो सकेगा ? परमात्मा आकाशवत निराकार निरवयव है । (३) उत्पत्ति उसकी होती है, जो वस्तु पहले नहीं हो फिर उत्पत्ति वाले का नाश भी निश्चित है, वह परमात्मा नहीं हो सकता । परमात्मा तो अजन्मा व अविनाशी है । (४) संस्कार तो मलिन वस्तु में होता है । परमात्मा तो नित्य शुद्ध है । अब केवल प्राप्त परमात्मा में अप्राप्ति का भ्रम ही जिज्ञासु को नाश करना है। (५) वह अज्ञान का नाश कर्म से नहीं, ज्ञान से ही होता है, इसके अतिरिक्त जीव को परमात्मा की अप्राप्ति के भ्रम की निवृत्ति अन्य किसी साधन से नहीं हो सकती । इसी उद्देश्य से इस ग्रन्थ की रचना की है कि ''जानो और पाओ'' । परमात्मा कभी दूर नहीं था, न है, न हो सकेगा । मृग के नाभि में कस्तूरी होते हुए भी उसे जैसे अप्राप्ति का भ्रम होने से वह बाहर खोजता हुआ निराशा लेकर मर जाता है, इसी प्रकार जीव के हृदय में परमात्मा होते हुए भी यह सारे जीवन उसे बाहर खोज निराश होकर मर जाता है ।

जो चीज प्रथम से सिद्ध होती है, उसे करके पाना नहीं पड़ता है प्रत्युत उसे जान कर ही पाया जाता है । परमात्मा तो

जीव का स्वभाव है जो जन्म से अग्नि उष्णतावत्, बर्फ शीतलता वत्, चीनी मधुरतावत् सिद्ध ही है । उसे पाना नहीं केवल जानना है । वेद, शास्त्र, पुराणादि में परमात्मा को जानने की ही बात कही है पाने की नहीं ।

''जानत तुमहि तुमहि होई जाइ''

ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति

''हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति''

'तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' 'ज्ञानादेव तु कैवल्यं'। 'ऋतेः ज्ञानान्न मुक्ति'। 'हृदय सर्वस्व विष्ठितम'

पाया कहे सो बावरा, खोया कहे सो क्रूर ।
पाया खोया कुछ नहीं, ज्यों का त्यों भर पूर ।।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे बनमाहि ।
ऐसे प्रभु घट घट बसे, मूरख खोजन जाहि ।।

घट घट में है सूझे नहीं, लानत ऐसे जिन्द ।
तुलसी या संसार को, भयो मोतिया बिन्द ।।

चलते चलते युग भया, मिला न प्रभुका गाँव ।
पांव रखा वहीं ब्रह्म है, बिन जाने कित जाव ।।

– स्वामी निरन्जन



मनुष्य जीवन

अनादि काल से यह जीव अपने वास्तविक स्वरूप को न जानने के कारण चौरासी लाख योनियों में आनन्द प्राप्ति हेतु ब्रह्मा से लेकर कीट पतंग योनियों को भोगता चला आ रहा है ।किन्तु इसे ब्रह्मादिक लोक तक जाकर भी अखण्ड आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकी । समस्त दुःखों से छूटने व अखण्ड आनन्द प्राप्त करने हेतु समस्त शास्त्रों में इस मनुष्य जीवन को ही देव दुर्लभ मुक्ति का द्वार रूप श्रेष्ठ योनि कहा जाता है । क्योंकि यह जीवन में मन, बुद्धि के द्वारा जीव इस आवागमन के चक्र से छूटने का साधन कर सकता है । इस जीवन के अतिरिक्त सभी योनियों में आहार, निद्रा, भय तथा सन्तानोत्त्पत्ति इन चार कर्मों की ही प्रधानता है । यह मनुष्य जीवन केवल इन्द्रियों के विषयों का भोग भोगने मात्र ही नहीं है । यह इन्द्रिय भोग भोगने की स्वतन्त्रता एवं बहुलता तो पशु–पक्षी योनियों में भी इस जीव को बिना प्रयत्न मिलती आरही थी, किन्तु आज तक देव योनि को प्राप्त कर वहाँ के भोग द्वारा भी किञ्चित् शान्ति नहीं मिलसकी ।

यह मनुष्य जीवन तो जीवन निर्वाह करने के लिये नहीं है बल्कि किसी सद्‌गुरु की शरण ग्रहण कर अपने अनादिकाल के भव–बन्धन से मुक्ति पाने के लिये द्वार रूप है । प्रतिदिन सोते, जागते, खाते मन में बस एक ही चिन्ता रहना चाहिये कि मुझे परमात्मा की अनुभूति, दर्शन, साक्षात्कार कैसे हो सकेगा ? मुझे कोई सद्‌गुरु की प्राप्ति कब होगी, मुझे

शाश्वत शान्ति कैसे मिल सकेगी ? इस प्रकार इस जीवन में भगवान को पाने के लिये, मुक्ति पाने की आग लगी होनी चाहिये और उसके लिये आलसी बनकर पड़े नहीं रहना चाहिये, प्रत्युत चेष्टा खोज करते रहना चाहिये । केवल विषयों की ही प्राप्ति हेतु चौवीस घन्टे नहीं पड़े रहना चाहिये ।

जीव को प्रारब्धानुसार भोगों के प्राप्त होने पर यही विचार करना चाहिये कि जो कुछ मिला है, वह मेरी योग्यता से अधिक ही परमात्मा ने दिया है । ऐसा विचार रखने वाले जीव को कभी अशान्ति, दुःख, ईर्षा आदि उत्पन्न नहीं हो सकेंगे । यह क्यों नहीं हुआ, वह कैसे मिले, उतना तो मुझे मिलना ही चाहिये था, मेरी योग्यता, पद के मान से यह ठीक नहीं है, उतना होता तो ठीक था, इस प्रकार के विचार से ही जीव को दुःख की प्राप्ति होती है । अतः ऐसे नश्वर शरीर एवं नश्वर भोग प्राप्ति के लिये विचार न कर परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही अधिक से अधिक समय निकालना चाहिये ।

समयाभाव होने से पांच-पांच मिनिट, दस-दस मिनिट प्रति घन्टा से समय निकाल मन में शान्ति लाने हेतु शान्त बैठ केवल आते-जाते श्वाँस को देखते रहें और किसी प्रकार का श्वाँसों का व्यायाम न करें । प्रति घंटा २ मिनिट ही यह विचार करे कि मैं कौन हूँ ? यह काम करने का इच्छा किसने किया ? कौन कर रहा है ? तू कौन है ? बस मन में यही विचार, यही प्रश्न, यही खोज बनी रहना चाहिये व जब तक इसका समाधान न मिले, जब तक कोई सद्गुरु न मिले तब तक मन में ऐसा विचार करते रहें ।

मैं तो शान्ति-अशान्ति, दुःख-सुख, काम-क्रोध, भूख-प्यास, शुभाशुभ विचार एवं अवस्थाओं को जानने वाला हूँ । मुझे देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, संघात् की किसी प्रकार की भी क्रिया एवं दुःख-सुख, पुण्य-पाप स्पर्श नहीं कर सकते । मैं तो शुभ-अशुभ वृत्तियों को

जानने वाला समस्त वृत्तियों, अवस्थाओं के बीच साक्षी रूप सदा विद्यमान हूँ ।

जाग्रत होते ही संकल्प–विकल्प उठने लगते हैं तब मन को समझाना चाहिये कि अभी तू जब गहरी नींद में था तब कैसा शान्त स्वरूप, आनन्द स्वरूप और सुख स्वरूप था । जैसे ही उठकर इस देहभाव में, अहं भाव में जागा और दुःखी हुआ । अब तू देखले जब तक तू गहरी नींद में मेरे से मिलकर था तब कोई दुःख, चिंता, भय, वासना, कामना आदि कुछ नहीं थी और जहाँ तूने मेरे तरफ से दृष्टि हटाया इस देह को मैं माना बस तभी दुःख की वर्षा होने लगी । जबकि गहरी नींद में बिना विषय को हटा पूर्णानन्द स्वरूप ही था ।

मैं परमात्मा का हूँ, परमात्मा मेरे हैं, परमात्मा मेरे पास निरन्तर रहते हैं फिर मुझे दुःख किस बात का, फिर अभाव किस बात का, फिर चिन्ता किस बात की ? परमात्मा ही सत्य है, परमात्मा ही नित्य है, परमात्मा ही आनन्द स्वरूप है और यही मेरा वास्तविक स्वरूप है । क्योंकि मैं सच्चिदानन्द परमात्मा का सनातन अंश होने से मैं भी सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ । यह बात भी सुस्पष्ट है कि कोई कार्य अपने कारण से पृथक् नहीं रहता है, जैसे स्वर्ण से निर्मित अलंकार स्वर्ण ही तो है । इसी प्रकार हे जीव ! तू मुझसे कभी दूर नहीं, न मैं तुझ से दूर हो सकता हूँ । लहर क्या सागर से दूर हो सकती है ? बल्कि लहर सागर ही है । अतः मनीराम ऐसा विचार करो कि मैं साक्षात् परमात्मा ही हूँ । इसके अलावा अन्य कोई विचार मत कर केवल आत्म विचार कर और आनन्द सागर में डुबकी लगाओ । अतः तू मुझ से अन्य न बन, जहाँ तू देह, प्राण, इन्द्रिय मन–बुद्धि में से कुछ भी बना, किसी में भी तादात्म्य किया तो दुःख का पहाड़ तेरे पर पडने ही वाला है । तात्पर्य यह है कि तू अन्य पर ध्यान मत दे, पराये लोगों की बात क्यों करता है । स्व आत्मा है, शेष सब देह संघात् पर हैं यह सब पराये है।

हे मन ! रात्रि को निद्रा से पूर्व विचार करों कि आज दिन भर में कितने शुभ–अशुभ कर्मों का लेन–देन रूप व्यापार किया ? अब आने वाले दिनों में वह–वह अशुभ कर्म, निंदा, असत्य, मिथ्या वचन, धोखा आदि दुष्कर्म द्वारा किसी को कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा । दूसरे प्रातः उठते ही उन शुभ कर्मों को करने व अशुभ कर्मों को न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करो। इस प्रकार प्रतिदिन अपने द्वारा हुए कर्मों का हिसाब रखने से बुरे कर्म रुकते चलेंगे व अच्छे कर्म बढते चलेंगे । जैसे आज मुझे किसी भी व्यवहार पर क्रोध नहीं करना है ऐसा उठते ही दृढ़ संकल्प कर लिया तो दिन में क्रोध का प्रसंग आने पर भी क्रोध नहीं आवेगा । यदि क्रोध प्रकट हो भी गया तो प्रातः काल की गई प्रतिज्ञा का स्मरण आते ही अहंकार, क्रोधादि शान्त हो जावेगा ।

हे मनी राम ! तुझे केवल तेरे मंत्र, जप, पाठ, पूजा, तीर्थ, मंदिर,होम, यज्ञ, दानादि शुभ कर्म पर ही धर्म की समाप्ति नहीं मान लेना चाहिये, प्रत्युत जब तक अपने आत्मा का बोध जाग्रत न हो, तब तक चुप हो नहीं बैठना चाहिये । संत शास्त्र तीन वस्तु दुर्लभ बताते है ।

(१) मनुष्य जीवन (२) मुक्ति की जिज्ञासा (३) महापुरुषों का संग ।

धन, सम्पत्ति, कुटुम्ब, परिवार, पद, प्रतिष्ठा मित्रादि सब कुछ का मिल जाना दुर्लभ नहीं किन्तु परमात्मा प्राप्ति की इच्छा, मुक्ति पाने की इच्छा जाग्रत होना यह महाभाग्य की बात किसी महा–भाग्यवान मनुष्य के हृदय में ही जाग्रत होती है ।

■■■

मन में शान्ति कैसे हो ?

देह एक जड़ पदार्थ है जैसे साइकिल, मोटर, कार आदि जड़ वस्तु को चलाने वाला चालक ही उन उन यन्त्रों को गति प्रदान करता है, वे मशीने अपने आप कहीं नहीं जा सकती । इसी तरह देह शव को उठाने, चलाने वाला मैं शिव स्वरूप आत्मा देह से पृथक हूँ । देह को कोई विचार नहीं होता है कि वह कहाँ बैठा है, कहाँ जा रहा है या क्या कर रहा है । समस्त विचार मन में ही उठते हैं, जो जीवित है उसे ही भय होता है । देह शव है इसलिये इसे मृत्यु का भी भय नहीं है । भगवान द्वारा अर्जुन को भी यही उपदेश दिया गया है कि हे अर्जुन ! यह सब तो मरे हुए ही हैं इन्हें मारने में तू केवल निमित्त मात्र खड़ा हो जा ।

वसिष्ठजी राम को कहते हैं हे राम ! यह जगत् तीन काल में नहीं है। एक मात्र परमात्मा ही सबके आदि, मध्य व अन्त में विलस रहा है। शरीर ही अपना नहीं तो उसके सगे सम्बन्धी अपने कैसे हो सकते हैं ? शरीर प्रारब्धानुसार चल रहा है इसमें ज्ञानी अज्ञानी किसी का वश नहीं चलता । बड़े–बड़े सिद्धि प्राप्त योगी, ज्ञानी भक्त तथा कर्मी जनों को भी भयंकर रोग, पीड़ा एवं दुर्घटना को सहना पड़ता है । राम, कृष्ण, सीता, पाण्डव, द्रोपदी, कुन्ती आदि अनेकों का इतिहास प्रमाण है ।

अतः देह सम्बन्धी विचार का त्याग कर आत्म कल्याण का ही एक मात्र चिन्तन करना चाहिये । क्योंकि प्रथम तो यह मनुष्य जीवन

मिलना ही दुर्लभ है, यदि यह मिलगया तो परमात्मा को पाने की इच्छा जाग्रत होना इससे भी दुर्लभ है । यदि ब्रह्म जिज्ञासा भी उदय हो गई तो ब्रह्मानुभूति कराने वाले सद्गुरु का मिलना तो अति दुर्लभ है ।

विचारें तो यह विचार करें कि 'मैं कोन हूँ' इस देह के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? जाग्रत काल तक ही देह व देह सम्बन्धी जनों के साथ मैं व मेरापन का सम्बन्ध होने से नित्य नहीं है । स्वप्न काल में सब **मैं** व **मेरा** पन बदल कर प्रति रात्रि में नूतन घर, परिवार, जीवन, संसार हो जाता है फिर सुषुप्ति में स्थूल व सूक्ष्म दोनों संसार समाप्त होकर गहरी नींद में जीव परमात्मा से सीधा मिलकर आनन्द का अनुभव करता है । मेरी शक्ति द्वारा ही जीव जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्था में भ्रमण करता है । मेरे बिना न जाग्रत है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति अवस्था है, किन्तु मैं इन तीनों अवस्थाओं के बिना भी रहता हूँ । मैं देह नहीं हूँ, इसलिये जन्म–मृत्यु मुझ में नहीं है, मैं निराकार, निरंजन, निष्क्रिय, निर्विकल्प, सत, चित्, आनन्द आत्मा हूँ ।

जब तक देहाध्यास मन से निवृत्त नहीं होता है, तब तक इस प्रकार विचार करते रहना चाहिये मैं कौन हूँ ? यह विचार करने वाला कौन है ? मेरा व इस जगत् का क्या सम्बन्ध है ? विचार करने से ज्ञान होगा कि शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि यह सब जगत् के पदार्थ है एवं जगत् पंच महाभूतों के पदार्थ है । मैं इन सबसे असंग, साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा हूँ। अनित्य संसार के धन–सम्पत्ति एवं सगे–सम्बन्धियों के अहंकार करने की अपेक्षा मैं साक्षात् परमात्मा हूँ, यह अहंकार करना अच्छा है । जगत् के पदार्थ अग्नि के समान है । इनमें घुसते ही, इन्हें अपनाते ही, इनका अहंकार करते ही यह जलाने वाले, दुःख देने वाले ही हैं । अतः देहाध्यास से सदा दूर रहने का ही प्रयास करते रहना चाहिये ।

जब कोई व्यक्ति आपको कोई शिक्षा, उपदेश सलाह देता है, तब आप उसकी सभी बातों को तो ग्रहण नहीं करते बल्कि जितना अच्छा

लगता है उतनी ही बात को, सिद्धान्त को ग्रहण कर शेष सब छोड़ देते हैं । तो फिर जब कोई आपकी बात को माने या न माने उसकी मरजी पर क्यों नहीं छोड़ देते हैं ? वह आपके बताये अनुसार न करे, न चले, न माने तो आपको उस पर क्रोध क्यों करना चाहिये ? इस प्रकार विचार करने से शान्ति प्राप्त हो सकेगी ।

जिसके हृदय में शान्ति नहीं उसको सोने से पूर्व व उठने के बाद ऐसा विचार करने से किसी बात पर क्रोध नहीं होगा, अशान्ति नहीं होगी ।

सुख पाने के लिये सभी प्रयत्न करते हैं किन्तु विवेक की कमी के कारण उन्हें यथार्थ मार्ग मिलता नहीं इसलिये वे सदा छोटी बातों पर क्रोध, अशान्त एवं दुःखी होते रहते हैं । वास्तविक सुखी होने का तो एक ही मार्ग है कि अपने आपको पहचाने कि मैं कौन हूँ ?

जो अपने को अनुभव में आया उतना ही कहे उसी प्रकार अपने जीवन में उतारे, यही सुखी होने का मार्ग है ।

जितना पढ़ा हो या सुना हो उससे अधिक मनन करना चाहिये । मनन से अधिक निदिध्यासन करना चाहिये । अभी तक दूसरों को बहुत उपदेश किया,अनेक शास्त्र पढ़े व अनेक सन्तों को सुना बस इतना ही पर्याप्त है । अब तो उसका अपने जीवन में अभ्यास करना है ।

जब कोई तुम्हारे प्रतिकूल किसी प्रकार का व्यवहार करे तब विचार करना चाहिये कि यह देह को मैं मानने के कारण ही मुझे दुःख लग रहा है । जबकि यह देह तुम नहीं हो । उपनिषद की घोषणा है 'तत्त्वमसि' तुम परमात्मा हो । शरीर तो आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी से बना रक्त, मांस, रज–वीर्य, हाड़, चर्म, लार, मूत्र, मल का एक थैला मात्र जड़ है ।

रोग शरीर में पैदा होते हैं। प्रारब्धानुसार रोग आया है वह अपना भोग देकर चला जावेगा । जब तक '**मैं शरीर हूँ**' यह भाव मन में जाग्रत नहीं होता है, तब तक तुम्हें किसी प्रकार न कोई हानि पहुँचा सकता है, न अपमान कर सकता है । **मैं शरीर हूँ** इस एक रोग से ही सब बीमारियाँ, सुख–दुःख, मान–अपमान, जन्म–मरणादि का दुःख सताता है । विचार करते रहो कि मैं देह नहीं हूँ, इसीलिये मुझे किसी प्रकार का सुख–दुःख नहीं, जन्म–मृत्यु द्वन्द्व नहीं है । मैं तो सच्चिदानन्द स्वरूप द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ । मैं समस्त द्वन्द्वों के बीच साक्षी रूप में अचल विद्यमान हूँ, किन्तु मुझमें कोई द्वन्द्व नहीं है ।

हे जीव ! इस संसार में तुम्हारे से एक भी वस्तु पृथक् नहीं है । जैसे स्वप्न में स्वप्न द्रष्टा से भिन्न कोई पदार्थ, स्थान या व्यक्ति नहीं होता, इसी तरह जाग्रत में भी तुम्हारे अतिरिक्त एक भी वस्तु नहीं है । तुम्हारे आधार से जगत् एवं जगत् कर्ता ईश्वर की सत्ता प्रभावित होती है । तुम द्रष्टा ही दृश्यमान जगत् बनकर दिखाई पड़ते हो । स्वप्न नगर व स्वप्न द्रष्टा जैसे दो नहीं है । इसी तरह यह तुम्हारा शरीर व समस्त शरीर गुड़े–गुड़िया की तरह है । बच्चे जैसे गुड़े, गुड़िया का खेल खेलते हैं इसी प्रकार जगत् में दिखाई पड़ने वाले स्त्री–पुरुष, पशु–पक्षी इन सभी को नचाने वाले तुम्हीं एक परमात्मा हो ।

देह का अन्तिम अवस्था मृत्यु है । अतः मृत्यु आने से पूर्व हमें परमात्म प्राप्ति का ज्ञान कर लेना चाहिये । आत्म सम्बन्धी विचार ही करना चाहिये कि मैं कौन हूँ ? परमात्मा कौन है ? मेरा व परमात्मा का क्या सम्बन्ध है ? हम दोनों एक है या पृथक् । इस प्रकार विचार करने से शरीर, मन, इन्द्रियादि से मैं पना दूर हो जावेगा व परमात्मा से एकत्व बुद्धि दृढ़ होती चलेगी । इसके लिये आत्म वेत्ता संत समागम व उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहना चाहिये ।

शरीर, प्राण, मन, बुद्धि को 'मैं' समझना ही महामाया है । इसी को अविद्या अथवा अज्ञान कहते हैं । इसके अतिरिक्त अविद्या, अज्ञान, माया कुछ वस्तु नहीं है । सुख–दुःख से अपने को पृथक् देखने में ही आनन्द है । कोई मान करे या अपमान करे दोनों अवस्था में समान साक्षी रूप बने रहना चाहिये । इसी को ब्राह्मी स्थिति या स्थित प्रज्ञता कहा जाता है । थोड़ी–थोड़ी देर बाद अपने बुद्धि से यह पूछते ही रहना चाहिये कि 'मैं कौन हूँ' ? यह काम करने के लिये किसने कहा एवं यह काम किसने करा ? जब तक यह शरीर है, तब तक ऐसा विचार करते रहें और अपने को द्रष्टा रूप में, साक्षी रूप में, अनुभव करते रहें । यदि आत्म स्थिति, द्रष्टा, साक्षी भाव दृढ़ हो गया है तो बारम्बार पूछने की जरूरत भी नहीं रहेगी कि 'मैं कौन हूँ' ? यह आत्म विचार अन्य सभी योगों में श्रेष्ठ है । कर्मयोग, भक्तियोग, अष्टांग योग, ज्ञान योग सभी योग इस आत्म निष्ठा में आकर समाप्त हो जाते हैं ।

मन कहाँ है ?

सुषुप्ति अवस्था में मन नहीं है इसलिये मन सत्य वस्तु नहीं है । सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं होता है जैसे मैं आत्मा की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्था में समान स्थिति बनी रहती है । मुझ आनन्द सागर के आधार पर ही मन रूप लहरे उठती–बैठती रहती है । मुझ चैतन्यात्मा को ही मन रूपी लहर कहा जाता है । मन नाम की कोई पृथक् वस्तु है ही नहीं, बल्कि चैतन्य स्वयं ही संकल्प कर बन्ध–मोक्ष, सुख–दुःख रूपमें प्रतीत होता है । इस प्रकार मन मुझ चैतन्य आत्मा का मिथ्याभास है । ज्ञानी इस बात को जानता है इसलिये उसका मन, मन नहीं प्रत्युत चैतन्य आत्मा ही है । अज्ञानी यह बात नहीं जानता है परन्तु ज्ञानी अज्ञानी दोनों का मन एक चैतन्य ही है ।

चैतन्य ही चैतन्य को देखता, सुनता, स्पर्श करता है । चैतन्य ही चैतन्य की गंध लेता, भोगता है । यही निदिध्यासन की स्थिति है । जगत् के पदार्थ शरीर, मन, बुद्धि आदि एक मात्र चैतन्य ही है, चैतन्य से पृथक् यहाँ किञ्चित् भी अन्य नहीं है । इस प्रकार विचार करने से सदा आनन्द में स्थिति बनी रहेगी । अन्य की भावना समाप्त होते ही दुःखदाई कुछ भी नहीं रह सकेगा । चैतन्य मुझ आत्मा में सुख दुःख नहीं है । देह व मन को भिन्न जानते ही जन्म–मृत्यु, सुख–दुःख, धर्म खड़े हो जाते है । तब भी तुम उनके द्रष्टा, साक्षी, आत्मा पृथक् ही हो जाते हो । इस प्रकार विचारते रहने से स्वरूप स्थिति सहज हो जाती है ।

चिंतासे मुक्त होने के लिये अपना शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, धन, पुत्रादि सभी अनात्म वस्तुओं को परमात्मा को अर्पण करदें तो जैसी परमात्मा की मरजी हो वैसा वह करें, रखें, फिर हमारी सब चिन्ता समाप्त । अब जैसा उसे अच्छा लगे वैसा वह करें, मैं क्यों अपने सर पर चिन्ता का भार वहन करूँ ? परमात्मा को केवल वाणी से ही अर्पण लोग करते हैं परन्तु हृदय से अपना ही सब कुछ मानते हैं ।

अज्ञानी लोग मृत्यु के भय से कांपने लगते हैं परन्तु गहरी नींद लेने में आनन्द अनुभव करते हैं । गहरी नींद अर्थात् अल्प मृत्यु में जब इतना बड़ा आनन्द है कि उसके सामने इन्द्र पद का सुख भी गौण हो जाता है तब मृत्यु जो दीर्घ नींद है उसमें कितना अधिक सुख होगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है । नींद में संकल्प रहित मन हो जाता है इस कारण निर्विकल्पता का आनन्द प्रकट हो जाता है । जाग्रत में भी कुछ क्षण आंखे बन्द कर संकल्प रहित होने का प्रयास करने से वही महान् आनन्दानुभूति की जा सकती है । मन का चक्र चलते रुका कि संसार चक्र समाप्त । मन ही संसार है । मन ही मैं–मेरा की कल्पना कर अनित्य संसार में नाना प्रकार का दुःख खड़ा कर लेता है ।

मन को पूछना चाहिये की तुझे गहरी नींद में जो सुखानुभूति हो रही थी वह किसकी थी ? तब न पिता–माता थे, न पति–पत्नी थे, न पुत्र–पुत्री, न सगा–सम्बन्धी, न सुख–दुःख, न गरीबी–अमीरी, न गुरु–शिष्य, न बन्ध–मोक्ष, न शत्रु–मित्र । जाग्रत वाले ! यह सब तो यहीं जहाँ के तहाँ रह जाते हैं और तू इन सबको छोड़ स्वप्न या गहरी नींद में चला जाता है, इसलिये न यह सब तेरे है और न तू इन सबका है । दुःख तुझ में है ही नहीं । किन्तु जब तू जाग्रत होता है तब पहले देह में मैं भाव एवं मेरा–तेरा भेदभाव जाग्रत कर दुःखी होता है ।

प्रत्येक संत, महात्मा एक ही बात कहते हैं कि देख ! जन्म–मरण, काम, क्रोध, सुख–दुःख, पुण्य–पाप, बन्ध–मोक्ष, हर्ष–शोक तेरा

नहीं है । यह हमारे मन–बुद्धि की ही कमजोरी है जो हम इस परम सत्य को स्वीकार नहीं करते हैं, इसीलिये सुखी–दुःखी होते हैं । **अतः प्रत्येक घंटे के बाद एकबार यह सन्तों, वेदों की वाणी का विचार करलेना चाहिये कि मैं निष्क्रिय, निर्विकार, अंसग, निरन्जन, साक्षी, आत्मा हूँ । देह संघात से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ।**

व्यष्टि देहाभिमान का त्यागकर समष्टि देहों के साथ हो जाने से कर्तापन के अहंकार से मुक्ति हो जाती है । प्रत्येक कार्य प्रकृति के द्वारा होता रहता है । मैं तो केवल इन सब कार्यों का साक्षी परमात्मा हूँ।

जब तक देह है तब तक तो सुख–दुःख की घटना, प्रसंग आते ही रहेंगे । किन्तु समझदारी इसी बात में है कि हम उन सब में न फंसे व असंग रह देखते रहें । परमात्म भाव में रहने पर ही जीवन शान्तिमय व्यतीत हो सकता है इसलिये जगत् के विचारों से निकल कर देह के प्रति अंहता तथा देह सम्बन्धी के प्रति ममता का विचार त्याग कर आत्म भाव, साक्षी भाव में ही मन की प्रवृत्ति करना चाहिये । जिससे मनुष्य जीवन की वास्तविक सार्थकता है और यही जीवन्मुक्ति है ।

साक्षी, द्रष्टा भाव को दृढ़कर निर्लेपता से देह के कार्यों के प्रति कर्तृत्वाभिमान किये बिना काम करते रहना चाहिये ।

जब तक घड़ा, नदी या कुवें में डूबा हुआ है उसे कहीं भी ले जाओ बोझा नहीं लगता है किन्तु जब पानी भरे घड़े को पानी से बाहर उठावेंगे तब बोझ लगता है । इसी तरह जब तक मन परमात्मा में डूबा है, द्रष्टा, साक्षी भाव में डूबा है तब तक संसार बोझा रूप नहीं लगता किन्तु जब मन द्रष्टा भाव से बाहर कर्ता भाव में आता है तब संसार बोझा रूप मालूम पड़ता है । अतः परमात्मा को सर्वस्व अर्पण कर देने से मेरापना नहीं होगा । जब मेरापन गया तब दुःख भी चला जाता है ।

मन में संकल्प–विकल्प उठते रहते है उन्हें रोकने हेतु पूछते रहना चाहिये कि मैं कौन हूँ ? तब उत्तर स्मरण में आजावेगा, गुरु वचन स्मरण में आजावेगा कि 'मैं तो साक्षी परब्रह्म हूँ'। ऐसा विचार मन में जाग्रत होते ही मन का मनस्वी पना समाप्त होकर अमनस्क अवस्था प्रकट हो जाती है और साक्षात् आत्म भाव में स्थिति हो जाती है । यह भाव का जाग्रत हो जाना एवं देह भाव का नष्ट हो जाना ही समस्त योग, यज्ञ, तप, जप, ध्यान, ज्ञान, भक्ति का अन्तिम ध्येय है । अपने देह सम्बन्धी संकल्प ही हमें दुःखी करते हैं । अतः मन के मैल को बाहर निकालो तभी शान्ति मिलेगी । जैसे शरीर का मैल बाहर आने से हलका पना, प्रसन्नता मालुम पड़ती है । मन में जितना मेरापन घुसाओगे उतना ही निकालने में कष्ट होगा ।

आप शरीर, मन, बुद्धि एवं विचारों को जानने वाले द्रष्टा–साक्षी आत्मा हो यह दृढ़ता लाओ एवं शान्ति पाओ ।

■■■

सच्चा योग क्या है ?

कर्म द्वारा, भक्ति द्वारा, योग द्वारा अथवा ज्ञान द्वारा परमात्मा के साथ एकत्व अनुभव करना ही योग है । अर्थात् संसार बन्धन, जन्म-मरण चक्र से छूटने की युक्ति ही योग है ।

योग के मुख्य्य रूप से दो मार्ग है एक ज्ञान मार्ग दूसरा प्राण निरोध । इन दोनों उपायों द्वारा संसार से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । इन दोनों योग में से किसी को प्राण निरोध करना कठिन लगता है तथा किसी को आत्मज्ञान प्राप्त करना कठिन लगता है ।

वशिष्ठजी राम को अपना मत बताते हैं कि मुझे तो आत्मज्ञान सरल, सहज, सुगम लगता है । जो पुरुष मन्द बुद्धि के कारण सत्य-मिथ्या, साकार-निराकार, जड़-चेतन, शव-शिव, आत्मा-अनात्मा, स्वयंप्रकाश-परप्रकाश का भेद नहीं कर पाता उसके लिये आत्म विचार कठिन होता है किन्तु विवेकवान, बुद्धिशाली पुरुष को आत्मज्ञान कठिन लगना सम्भव नहीं । अज्ञान साक्षी द्वारा प्रकाशित होता है जब कि ज्ञान तो स्वयं प्रकाश है ।

ज्ञान योग से अष्टांग योग कठिन है । करने वाला दोनों को कर सकता है । ज्ञानी विचार करता है कि मैं शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि देह संघात नहीं हूँ, प्रत्युत मैं इन समस्त देह संघात का प्रकाशक द्रष्टा साक्षी असंगात्मा हूँ, तभी यह जन्म-मृत्यु, बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख के भ्रम से मुक्त हो जाता है ।

वेदान्त कहता है सभी प्राणी वही एक सत ब्रह्म है । भूलसे भी कभी मत मानना की मैं देह हूँ, मैं जीव हूँ, मैं कर्ता-भोक्ता हूँ, मैं बद्ध हूँ ।

यह मन, बुद्धि, काम–क्रोध, मान–अपमान, तभी तक सुखी दुःखी करते है जब तक जीव अपने साक्षी आत्म स्वरूप का दृढ़ निश्चय नहीं करता है । जब तक आत्म विचार करता नहीं तब तक जीव की संसार के प्रति आसक्ति निवृत्त नहीं हो सकेगी ।

अन्तःकरण में दृढ़ वैराग्य जब तक जाग्रत नहीं होता है तब तक संसार मिथ्या रूप मालुम नहीं पड़ता है । जो वस्तु नित्य प्राप्त है उसे प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार के साधन करने की जरूरत नहीं रहती है, उसे केवल ज्ञान द्वारा जानने कि आवश्यकता रहती है, जैसे मृग को कस्तुरी प्राप्त है किन्तु अज्ञानता वस इसे अन्यत्र मान खोजता रहता है । मृग को बोध होने पर उसकी खोज समाप्त हो जाती है । इसी प्रकार जीव को जब स्वरूप बोध हो जाता है तब उसे परमात्मा प्राप्ति के लिये किसी प्रकार साधन करने की जरुरत नहीं रहती है। वह जान लेता है कि जिसे मैं खोज रहा था वह ब्रह्म मैं स्वयं हूँ ।

अतः शरीर, वाणी और मन द्वारा जो भी कार्य हो उसे निष्काम भाव द्वारा समाज कल्याणार्थ करना चाहिये । शक्ति का जितना उपयोग हो उतना करना चाहिये । परमात्मा ने मुझे शरीर, वाणी तथा मन द्वारा सेवा करने के लिये ही भेजा है, यह मन में धारणा होनी चाहिये ।

देह सम्बन्धी जनों में अनादिकालसे मोह–ममता करते आने पर भी किसी ने हमारा उद्धार नहीं किया । अतः उनसे स्वतन्त्र हो मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष प्राप्त करने के लिये हृदय में सच्ची भूख जाग्रत करो ।

अग्नि से कोयला विमुख होने पर कालाशता आती है इसी तरह मन परमात्मा चिन्तन से विमुख होता है तभी दुःख–बन्धन प्रकट होता है । अतः मन रूप कोयले में साक्षी द्रष्टा आत्मा रूपी अग्नि को लगादो तो मन अपने धर्म सहित भस्म हो शुद्ध आत्मारूप प्रकट हो जावेगा ।

■■■

स्वरूप चिन्तन

आत्मा अतिरिक्त कुछ अन्य सत्य नहीं है इस प्रकार प्रति घन्टा विचार करते रहोगे तो अहंकार से मुक्ति बनी रहेगी फिरतो आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

संसार के लोग तुम्हारी प्रशंसा करे, तुम्हारा नाम लेते रहे, तुम्हें दयालु, परोपकारी, होशियार कहते रहें उससे तुम्हारा कोई भला होने वाला नहीं । अनेक राजा महराजा महा पुरुष होगये तथा काल भोग बन गये आज उनका कोई नाम भी नहीं जानते । उन्हें जिन्होंने देखा उनकी क्या देखने मात्र से मुक्ति या साम्राज्य प्राप्त हुआ ?

जैसे अन्न, जल, पवन, प्रकाश बिना हमारा जीवन नहीं चलता उसी प्रकार बिना परमात्मा के, बिना चैतन्यात्मा के भी हमारा जीवन एक क्षण नहीं चल सकता । अतः हमें उसका एक क्षण भी विस्मरण नहीं करना चाहिये । जैसे अन्न,जल, पवन, प्रकाश के बिना हमें व्याकूलता लगती है, उसी तरह आत्म चिन्तन किये बिना हमें व्याकुलता लगनी चाहिये । कुछ खोया-खोया-सा लगना चाहिये, बैचेनी लगना चाहिये । जब ऐसा लगने लगे तभी अपनी आत्म स्थिति समझना चाहिये ।

अपने को तुम एक साधारण मनुष्य नहीं बल्कि साक्षात् परमात्मा रूप जानो । जब भावना मात्र से गति है, तब भिखारी क्यों मानते हो, श्रेष्ठ ब्रह्म ही मानो । उसमें तुम्हें कौन पैसा लगता है या कठिन तपस्या करना है ।

बालक जैसे बड़ा होता जाता है वैसे ही वह गुड़ा–गुड़ियों का खेल छोड़ता जाता है । इसी तरह जब तक अज्ञान होता है तभी तक जगत् की वस्तुएं अच्छी लगती है और जैसे–जैसे ज्ञान बढ़ता है वैसे ही जगत् असत्य एवं परमात्मा ही सत्य लगता है। यदि सत्य तरफ न दौड़े तो जीव की बालक अवस्था मानी जावेगी; क्योंकि उसे खिलौने रूप संसार के पदार्थों में आसक्ति है । नाम–रूप खिलौना है एवं उनमें व्यापक वह धातु ही सत्य है जिससे वे पदार्थ घड़े गये हैं । चूड़ी, चैन, कंगन में एक मात्र स्वर्ण ही सत्य है । इसी तरह नाम रूप सर्व जगत् कल्पित है, सत्य वस्तु तुम एक द्रष्टा, साक्षी, आत्मा ही हो। तुमसे जगत् की सिद्धि है, तुम्हारे बिना जगत् शून्य है ।

संसार के प्रत्येक पदार्थ में नाम, रूप, अस्ति, भाति, प्रिय यह पांच अंश होते हैं । उन में से प्रथम दो नाम, रूप माया का अंश होने से मिथ्या है और शेष तीन अस्ति, भाति, प्रिय ब्रह्म का अंश होने से सत्य है । इस प्रकार संसार के किसी भी वस्तु को देखने से उसका नाम, रूप तो माया का अंश है और उस अध्यस्त वस्तु का मूलआधार अधिष्ठान अस्ति,भाति, प्रिय ब्रह्म ही सत्य रूप में प्रतीत होता है ।

याद रखो ! शरीर, वाणी, मनादि जगत् की सेवा करने के लिये मिले हैं। अतः समस्त जीवों के साथ मित्र भाव, समता भाव, प्रेम भाव का व्यवहार करना चाहिये । इन सभी नाम, रूप में प्रतीत होने वाले जीवों के शरीर एवं जीव तुम्हारे ही स्वरूप हैं। याने तुम स्वयं ही हो इस बात का सदा स्मरण रखना।

देह व जगत् हर क्षण बदलते रहते हैं इसमें मन लगाओगे तो सदा दुःखी रहोगे किन्तु अपने आत्म स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं है। अतः रात दिन स्वरूप चिन्तन की ही व्याकुलता बनी रहना चाहिये।

देहाध्यास छोड़ो

जब शारीरिक अवस्था एवं मानसिक अवस्था ठीक न हो तब एकान्त में बैठ प्रश्न करना चाहिये कि 'मैं कौन हूँ'? मैं शरीर हूँ कि मन हूँ कि मैं सर्व साक्षी हूँ।

यदि तुम शरीर हो ऐसा मानते हो तो शरीर पंचभूत का कार्य है ऐसा शास्त्र प्रमाण है । अतः तुम शरीर नहीं, शरीर तुम्हारा नहीं और शरीर के सम्बन्धी भी तुम्हारे नहीं फिर तुम शरीर की चिन्ता किसलिये करते हो । शरीर की चिंता पंच भूत को सौंप दो, क्योंकि यह उनका है। कार्य सदा कारण का ही हुआ करता है ।

जैसे तुम्हारा कपड़ा, पेंट, शर्ट, साड़ी तुमसे अलग हैं और कपड़े गन्दे होने पर, दाग–धब्बा होने पर यह नहीं कहते कि मैं गन्दा हो गया मेरे पर दाग–धब्बा लग गया, मैं फट गया या मैं जल गया । क्योंकि कपड़े तुमसे अलग है । इसी प्रकार तुम शरीर से भी पृथक हो तब शरीर के जलने, कटने, भीगने, सूखने, बीमार होने, भूखे, प्यासे होने, किशोर, यूवा, प्रोढ़ होने, वृद्ध होने पर मैं जवान–बुढ़ा, मैं रोगी, मैं भूखा–प्यासा, मैं दुर्बल–मोटा, मैं लम्बा–छोटा, मैं कट गया, मैं जल गया, मैं भीग गया, मैं सूख गया, मैं सुन्दर–असुन्दर हूँ ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये ।

इसी प्रकार मन की चंचलता, सुखी–दुःखी अवस्था, शोक–मोह, काम–क्रोधावस्था को भी अपनी अवस्था नहीं मानना चाहिये।

क्योंकि आप मनके बारे में मेरा मन कह कर भी बात करते हो तब जो मेरा है वह मैं कभी नहीं हो सकता । अतः अब एक ही विचार करना रहा कि मैं साक्षी चैतन्यात्मा हूँ, उपरोक्त सभी प्रंपच मुझमें नहीं ।

समस्त चिन्ता, भय, शोक, मोह का जाल मन ही रचता है । अतः मन को कहदें कि हे मनी राम ! तेरे नचाये मैं अनादि से आजतक बहुत नाचा, भटका, रोया किन्तु अब तेरा मेरा कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि तेरे कहने पर चलनेसे मुझे कोई शान्ति नहीं मिली । अब तू तेरा रास्ता पकड़, मैं तेरे पीछे नहीं चलूँगा । जिस गुरुदेव ने मुझे सच्ची शान्ति का मार्ग बताया उसी आत्म पथ पर चलूँगा । वही सरल, सुगम एवं सच्चा मार्ग है । भगवान श्रीकृष्ण भी यही बात कहते है –

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'

व्यवहार दशा में सब कुछ परमात्मा के समर्पित करदेना चाहिये । एकमात्र परमात्मा की ही शरण ग्रहण कर चलना चाहिये । जो करना है, जैसा करना है, जब करना है, वह वैसा तब स्वयं करेगा, मैं उसकी चिन्ता क्यों करूँ ? परमार्थ दशा में तो एक परमात्मा के सिवा अन्य कुछ मैं–तू, यह–वह है ही नहीं । जहाँ दूसरा कोई नहीं वहाँ सुख–दुःख किससे मिले व किसको मिले ?

जब मन ठीक न हो, अनात्म चिन्तन करता हो तब श्वाँस में होने वाले अजपा जाप, अनाहत नाद, सोऽहम् भाव का चिन्तन, सुमिरन करें अथवा गुरु मन्त्र का जाप करें ।

घर में अशान्ति होने से अपने बच्चों के जीवन में उसका बुरा असर पड़ता है । अतः उनका जीवन बर्बाद न करें । तुमने बच्चे पैदा किये हैं तो उनका जीवन अपनी गन्दी आदतों द्वारा न बिगाड़े । सदा साक्षी भाव में स्थित रहे, इस प्रकार अखण्ड शान्ति प्राप्त कर सकोगे ।

उपासना

मन को इष्ट देव में जोड़ना उपासना कहलाती है । उपासना के तीन भेद हैं (१) परोक्ष (२) अपरोक्ष तथा (३) अहंग्रह उपासना ।

(१) परोक्ष उपासना – जिस देव का हमें ज्ञान नहीं किन्तु किसी से सुनकर उसकी आराधना उपासना करना ।

(२) अपरोक्ष उपासना – जिस देव का अपने को ज्ञान नहीं उसको भावना द्वारा सन्मुख होने की भावना तथा बाते करना स्वामी रामकृष्ण व काली, मीरा व कृष्ण, नामदेव व विठ्ठल की तरह ।

(३) अहंग्रह उपासना – जिस देव की उपासना करता हूँ वह देव मैं स्वयं हूँ ऐसा अनुभव करना ।

प्रतीक उपासना में बाहर की मूर्ति में पदार्थ दृष्टि का लोप करके ईश्वर की दृष्टि करना जैसे शालीग्राम मूर्ति से पत्थर दृष्टि हटा उसे ईश्वर रूप, शिवरूप मानना चाहिये । यदि उसमें ईश्वर बुद्धि न हुई तो फिर वह जड़ पूजा ही कहलावेगी ।

अहंग्रह उपासना में ब्रह्म ही मेरी आत्मा है, ऐसा सदा चिन्तन करना । मनुष्य जैसी इच्छा करता है वैसा ही बन जाता है । तब फिर ब्रह्म चिन्तन ही क्यों न किया जाय । प्रतीक उपासना अथवा अहंग्रह उपासना में संसार के नाम रूप का परित्याग कर जल, पवन, सूर्य, चन्द्र

के साथ ब्रह्म को जोड़ देना है । जैसे अन्न ब्रह्म, जल ब्रह्म, पवन ब्रह्म, तेज ब्रह्म, आकाश ब्रह्म रूप जानना चाहिये क्योंकि एक ब्रह्म के अतिरिक्त यहाँ किञ्चित भी अन्य नहीं है ।

वास्तविक उपासना तो यह है कि जल का रूप दृष्टि में न रहे, स्पन्दन रूप पवन भी दृष्टि में न रहे किन्तु ब्रह्म सत्ता का ही भान रहे । प्रतिमा से प्रतिमा पना निकल जाय और उसमें सत्ता रूप चैतन्य आत्मा की ही अनुभूति होती रहे ।

जब तक तुम्हारे शरीर की प्रत्येक क्रिया परमात्मा की उपासना रूप न हो, तब तक तुम्हारी उपासना दिखावा मात्र है ।

जिस पुरुष की प्रत्येक क्रिया ईश्वर की क्रिया मालुम पड़ती हो कि जब मैं उठता हूँ तब परमात्मा ही उठते हैं, जब मैं चलता हूँ तब परमात्मा ही चलता है, जब मैं देखता हूँ तब परमात्मा ही देखते हैं, जब मैं सुनता हूँ तब परमात्मा ही सुनते हैं, जब मैं खाता हूँ तो परमात्मा ही खाते हैं, इस प्रकार जिसकी प्रत्येक क्रिया परमात्मा की क्रिया बन जाती है फिर भला उसे किस बात का दुःख, शोक, भय सता सकेगा ? किसी प्रकार नहीं । उसके जीवन में तो केवल आनन्द ही आनन्द है ।

इस प्रकार की उपासना वाले साधक को बहुत शिघ्र ही आत्मसाक्षात्कार हो जाता है । इस प्रकार की उपासना में द्वैत भाव मिट जाता है एवं एकत्व भाव प्रबल हो जाता है । अहंकार का नाश हो जाता है । मन बुद्धि निर्मल पवित्र बन जाते हैं । एकत्व उपासना के अतिरिक्त सभी उपासना निरर्थक है । निश्चय रूप ऐक्य उपासना बिना परमात्मा का साक्षात्कार कभी सम्भव नहीं है ।

■■■

देहाध्यास मिटावें

साधक को देहाध्यास दूर करने के लिये मन में ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस–जिस पदार्थ को ''मैं'' जानता हूँ, उस–उस पदार्थ से ''मैं'' सर्वथा पृथक् हूँ। शरीर को ''मेरा'' जानता हूँ इसलिये शरीर का नाम, रूप, जाति, आश्रम, सम्बन्धी, परिणाम, जन्म–मृत्यु में से कोई भी एक मैं नहीं हूँ। यह सब शरीर में है, शरीर के हैं । इन्द्रियों को मैं जानता हूँ इसलिये मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, इन्द्रियों से असंग हूँ । मैं मन–बुद्धि को जानता हूँ इसलिये मैं मन–बुद्धि से अलग हूँ ।

मन व शरीर के सुख–दुःख, रोग–भोग को मैं जानता हूँ इसलिये मैं उनसे पृथक् हूँ । जब मैं शरीर, मन, बुद्धि से पृथक हूँ तब उनके धर्म जन्म–मरण, शोक–मोह, सुख–दुःख मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकते । मैं सबको जानने वाला सबसे पृथक साक्षी, आत्मा हूँ ।

अपने अन्दर यह जानते रहना चाहिये कि मैं शरीर, मन, बुद्धि नहीं तो राग–द्वैष, मैं–मेरा, सुख–दुःख व जन्म–मरण भी मेरा नहीं । मैं इन सबसे अलग असंग आत्मा हूँ ।

उठते समय पूछना चाहिये कि कौन सोया था, कौन उठा और तुम कौन हो ? उत्तर मिलेगा मन उठा और उसने इन्द्रियों व शरीर को जाग्रत किया । अब इन्द्रियाँ अपने–अपने कार्यों में लग रही है मैं तो इस मन, इन्द्रिय व शरीर की सभी क्रियाओं को जानने वाला हूँ ।

जाग्रत होते ही मैं साक्षी हूँ । मैं आत्मा हूँ । शरीर के सभी व्यवहार का तथा उसी तरह मन, बुद्धि की अवस्थाओं का मैं द्रष्टा, साक्षी हूँ । इन विचारों द्वारा आज नहीं तो थोड़े दिन बाद, महिने बाद, वर्ष बाद या जन्मों के बाद यह अनुभव जाग्रत हुए बिना बन्धन से छुटकारा मिलना सम्भव नहीं है ।

जिस जिस पदार्थों को मैं जानता हूँ उन सबसे मैं अलग हूँ ऐसा सभी का अपना अनुभव है । अतः अपना वास्तविक स्वरूप इन सबसे पृथक् द्रष्टा, साक्षी मात्र है । मुझमें जाना–आना, जन्म–मरण, सुख–दुःख, बन्ध–मोक्ष नहीं है ।

जो होना होगा वही होगा, जो नहीं होता है वह कभी नहीं होगा फिर मुझे शोक क्यों ? जानेवाले के प्रति मोह क्यो ? परमात्मा सर्वत्र है इसलिये वह मुझमें व सबमें सब समय है इसलिये दुःख–सुख जो भी हो सब उसीको है । मेरे द्वारा होने वाली सभी क्रियाओं का प्रेरक वही है, जब उसकी सत्ता पाये बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता तब मेरे शरीर का मालिक संचालक शक्ति प्रदायक वही है फिर मैं क्यों बीच में आकर चिन्ता करूँ ?

प्रतिदिन थोड़ा पढ़ना चाहिये व अधिक उसे अपने जीवन में उतारना चाहिये । सत्संग करना चाहिये किन्तु वह संत अनुभवी होना चाहिये यदि सच्चा सन्त नहीं तो वह गलत मार्ग में ले जाकर हमारी दुर्गति भी करा देगा । अतः सद्गुरु नि:श्वार्थी, निष्कामी, ज्ञानवान होना चाहिये ।

समर्पण बुद्धि जगाओ

परमात्मा की शक्ति के बिना हमारे जीवन में हम एक क्षण भी नहीं रह सकते । हमारा एक–एक श्वाँस उसके द्वारा ही गमनागमन कर रहा है । हमारा होना परमात्मा के होने का ही प्रत्यक्ष प्रमाण है । जैसे पंखा, बल्ब, टी.वी. का काम करना बिजली होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है इस विद्युत् शक्ति के बिना कुछ नहीं हो सकता इसी प्रकार हमारे शरीर का प्रत्येक क्रिया अखण्ड परमात्मा की शक्ति द्वारा ही सम्पन्न हो रही है उसके बिना एक श्वाँस भी भीतर बाहर नहीं हो सकता । परमात्मा व हमारे बीच अहंकार ही बाधक है । ऐसा दृढ़ निश्चय करने से हमारा क्षणिक अहंकार अपने आप नष्ट हो जावेगा । इस अहंकार के कारण ही जीव दुःखी–सुखी होता रहता है ।

कार, मोटर, ट्रेनादि किसी वाहन में बैठ यात्री यात्रा कर रहा हो और वह अपना बोझ अपने सरपर रखे या अपने बाजु में रखें किन्तु बोझ तो वाहन पर ही रहेगा फिर सर पर रख कर क्यों कष्ट उठाया जाय ? इसी प्रकार हमारे जीवन का बोझा परमात्मा ही उठा रहा है फिर हम क्यों अपने सर पर अहंकार का बोझ उठा नाहक कष्ट पावें ? इतना विचार यदि मनुष्य करले तो सम्पूर्ण जीवन आनन्दमय व्यतित हो सकता है ।

हमारा आत्म विश्वास, आत्म धन, आत्म बल अधिक होना चाहिये किन्तु हम परमात्मा पर भरोसा न कर संसारियों पर ही भरोसा करते एवं सदा धोखा खाते आ रहे हैं । मनुष्य को ऐसा मनोदशा होनी चाहिये कि अन्न, जल, के बिना मैं रह सकता हूँ किन्तु पवन रूप परमात्मा के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकूँगा ।

हमारे जीवन में एक परमात्मा के सिवाय दूसरा कुछ न रहे अपने सहित समस्त जगत् का भाव जब तक अभाव रूप न घट जावे तब तक शान्ति मिलना सम्भव नहीं । चाहे शीर्षासन करो, पन्चाग्नि तपो, जल अथवा पवन ले उपवास करो तो भी अपने सर्व अहंकार का त्याग किये बिना दुःख की सबीज निवृत्ति नहीं ।

जो जैसा है उसे वैसा ही देखना ज्ञान है । अलंकार स्वर्ण है तो उसे स्वर्ण देखना ही ज्ञान है, अलंकार देखना अज्ञान है । अपना वास्तविक स्वरूप आत्मा है, परमात्मा है और अपने को आत्मा रूप न जान अनात्म, नश्वर, जड़, विकारी शरीर जानना अज्ञान है । शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ और मन, बुद्धि तो आत्मा के काम कराने के साधन है । साधक को साध्य नहीं मान लेना चाहिये । जैसे मूर्ति पूजा, जप, ध्यान यह परमात्मा पाने का साधन है, यह साध्य नहीं है । साधक को इसी पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, मन्दिर ध्यान साधनों में ही अटक कर नहीं बैठ जाना चाहिये । यह तो साधन की प्रारम्भिक अवस्था है मन्जिल तो सत्य परमात्मा है ।

काम करते करते जैसे लोग तम्बाखू, गुटखा, बीडी, सिगरेट, पान, मसाला आदि का सेवन करते रहते हैं, इस नशे के बिना उनका काम नहीं चलता इसी प्रकार साधक को काम करते–करते मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ इस भाव में डुबकी लगाते रहना चाहिये ताकि कर्म में कर्तापन का अहंकार जाग्रत न हो सके व लाभ–हानि में सुख–दुःख न हो सके। इस प्रकार शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि से काम लेते रहें । तो काम करने में निराशा, थकावट नहीं भी होगी । हरेक महापुरुष भी इसी प्रकार उल्लास एवं आत्मबल द्वारा काम करते आ रहे हैं । अतः प्रत्येक दिन एक घन्टा एकान्त में बैठ परमात्मा में आत्म समर्पण करे । अथवा प्रत्येक घन्टे के बाद पांच मिनिट इस द्रष्टा, साक्षी भाव रूप आनन्द सागर आत्मा में डुबकी मार लिया करें तो हमेशा आनन्द में ही रहोगे । दुःख का तनिक भी स्पर्श नहीं हो सकेगा जैसे सूर्य को कालापन का स्पर्श नहीं होता । ■■■

साक्षी भाव को जाग्रत करें

जब तक शरीर व मन को 'मैं' हूँ करके जानते रहेंगे तब तक ही चारों तरफ से जगत् की चिन्ता, अभिमान, दुःख घेरते रहेंगे । पर यह शरीर, मन, बुद्धि मैं नहीं हूँ ऐसा बोध जाग्रत होने पर किसी प्रकार की अशान्ति, अभाव, चिन्ता, भय नहीं हो सकेगा ।

यह जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति मेरे द्वारा जानी जाती है, मेरे बिना इसकी सिद्धि नहीं । मैं जिसे जानता हूँ, मैं उससे पृथक ही रहता हूँ । अनादि से आज तक अनन्त संसार चक्र देखे, अनन्त स्वप्नसंसार मैंने देखे लेकिन इसके बनने, बिगड़ने से मेरे आत्मा में तो कोई परिवर्तन नहीं घटा । मैं तो आज तक अपने द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वभाव में ज्यों का त्यों अचल आनन्द रूप ही रहता हूँ । शान्ति का यह सबसे सरल उपाय छोड़ अन्य साधन में भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

हे जीव ! निश्चयकर कि मैं शुद्ध स्वरूप, विशुद्धानन्द साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ । यह तीन बार सत्य है । अपना स्वरूप देह, प्राण, मन बुद्धि से परे है । सब अशान्ति की जड़ है यह मन को, मन की दशा को मैं मान लेना ।

यह मन भी हमें दुःख रूपता का अनुभव तब कराता है जब हम एक शरीर, एक मन, एक परिवार को सत्य मान उसमें अभिमान करलेते हैं ।

साधक विचार करे कि प्रति रात्रि सुषुप्ति में हमारा इस शरीर, मन, तथा सम्बन्धियों से किसी प्रकार का अहंकार नहीं रहता, स्मरण नहीं । रहता तब भी किसी को, किसी प्रकार का वहाँ दुःख नहीं । वह अवस्था हमारी अज्ञान निद्रा में चली जाती है । इसी अवस्था द्वारा हम जाग्रत में ज्ञान द्वारा अपनी असंगता का भान करले तो सब समय आनन्द की ही वर्षा होती रहेगी । अतः साधक को जाग्रत अवस्था में एक शरीर, एक मन में अहंकार न कर बल्कि मैं इस शरीर, मन, बुद्धि को जानने वाला इससे पृथक् ''चैतन्य द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ'' इस भाव में अपने अहंकार को जोड़ना चाहिये । ।

हमारे द्वारा दैनिक अनेक प्रकार की क्रिया होती रहती है । अतः प्रत्येक क्रिया के पूर्व यह विचारना चाहिये कि यह क्रिया करने को कौन कह रहा है ? यह क्रिया कौन करेगा ? यह क्रिया का लाभ हानि कौन भोगेगा और तुम कौन हो ? कार्य समाप्त होने पर फिर मन ही मन पूछों कि यह काम किसने किया और मैं कौन हूँ ? इस प्रकार यह चारों प्रश्न हर क्रिया के समय पूछते ही रहना चाहिये । इस प्रकार पूछने व उत्तर लेने में, कर्म के प्रति मैंने कहा, मैंने किया, मैंने भोगा तो अपने में कर्तृत्वाभिमान एवं भोगतृत्वाभिमान जाग्रत ही नहीं हो सकेगा ।

इस प्रकार के चिन्तन से जीव जीवनमुक्त ही रहेगा । बाहर उच्चारण न हो मन में ही प्रश्न तथा मन में ही उत्तर प्राप्त करते हुए असंग, द्रष्टा, साक्षी आत्म-भाव में बने रहें । इस प्रकार प्रश्न द्वारा मालुम पड़ता रहेगा कि मन क्रिया करने को कहता है, क्रिया देह, प्राण, इन्द्रियों से मन कराता है । मन ही उसका फल सुख-दुःख का भोक्ता है और मैं तो सभी प्रारम्भ से अन्त तक की क्रिया का साक्षी, द्रष्टा बना देखता रहता हूँ । यह भावना ही दृढ़ करने का अभ्यास करना चाहिये ।

जैसे अज्ञान काल में हम सभी को यह दृढ़ निश्चय रहता है कि मैं ब्राह्मण क्षत्रिय आदि स्त्री पुरुष हूँ इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं रहता इसी प्रकार मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ निश्चय रहना चाहिये ।

ध्यान रखो कि मैं साक्षी आत्मा हूँ । जब मन आत्म बुद्धि का त्याग कर देह भाव में फंसता है तभी दुःख की प्राप्ति होती है । आत्मा तो आनन्द स्वरूप है, यह सुषुप्ति अवस्था द्वारा प्रत्येक साधक को बोध मिल रहा है । आत्म दृष्टि ही यथार्थ दृष्टि है । समाधि की सिद्धि तभी हुई मानना चाहिये जब देह सहित समस्त सम्बन्धी मन से निकल जावे । धन, सम्पत्ति का अभिमान समाप्त हो जावे । नाम, जाति, पद, उपाधि का मैल मन से साफ हो जावे और एक मात्र चैतन्यात्मा में ही मन ठहर जाय । आत्मा स्वयं ही रह जाय । आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी मन में न रह जाय ।

सबसे पहले शरीर व मनसे अलग होकर विचार करना चाहिये कि मेरे सिवाय अन्य कुछ दिखाई देता नहीं, तो फिर जगत् कहाँ से आया ? जगत् है ही कहाँ ? मेरे होने से जगत् है, मेरे अस्तित्व से जगत् है । मैं आनन्द स्वरूप हूँ तो मुझमें अध्यस्त जगत् भी आनन्द स्वरूप ही है ।

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सब अपने स्वभाव के अनुसार काम कर रहे हैं । इन्द्रियाँ अपना धर्म नहीं बदलती, मन अपना धर्म नहीं बदलता, प्राण अपने धर्म में चलता है, सब अपने–अपने धर्म में बर्तते हैं । अतः इन देह संघात् का चिन्तन न कर अपने आत्म भाव, साक्षी भाव में ही दृढ़ता से रहने का अभ्यास करना चाहिये । अपनी आत्म निष्ठा में ही सदा मस्त रहना चाहिये ।

मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के भाव–अभाव, उदय–अस्त भावों से परे रहने वाला हूँ । मैं सब भावों को जानता हूँ, मुझे कोई नहीं जानता है । फिर तो इस जानने न जाने के साक्षी भाव की भी तिलांजली देना है, क्योंकि भावाभाव व साक्षीभाव अन्तःकरण तक ही है । ऐसी दृढ़ता जब तक न आवे तब तक कर्म करते हुए, निष्क्रिय बैठे हुए, शयन या जाग्रत करते समय मन में प्रश्न करते रहिये कि मैं कौन हूँ ? इस चिन्तन को

कोई योग कहे, कोई भक्ति कहे, कोई ज्ञान कहे, हमें इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहिये कारण हम तो इन सबसे परे हैं ।

जैसा हमारा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्विकार, निष्क्रिय, असंग, निरामय स्वरूप है, वैसा ही प्रत्येक ज्ञानी–अज्ञानी सभी जीवों का वास्तविक स्वरूप है । मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी सभी का आधार यही एक सत्यात्मा है । शरीर, मन, बुद्धि से जो परे है वही सच्चा अहं है उसी में दृढ़ रहना चाहिये कि वही मेरा वास्तविक स्वरूप है ।

अपने स्वरूप अचल, अखण्ड आत्मा में बढ़ना–घटना नहीं होता है । यह ऊचा–नीचापन, कम–ज्यादा, सब विकारी मन में ही गडबड़ होती रहती है । इन समस्त विकारों परिवर्तनों को जानने वाले मुझ साक्षी आत्मा में किसी प्रकार का तनिक भी परिवर्तन नहीं होता है । अतः अपने झूठे अहंभाव को, शरीर, मन, बुद्धि से उठाकर आत्मा में ही जोड़ना चाहिये । यह आत्म निष्ठा को जाग्रत करना ही सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा यज्ञ है । यदि मानव जीवन पाकर यह करने योग्य काम नहीं किया, तो महान हानि है । मोक्ष के द्वार पर आकर कर्म की यात्रा पर फिर न निकल जाना, जीत होने के अवसर को खो मत देना ।

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि का अपना अपना कार्य तो चलता ही रहता है और हम साक्षी रूप से सभी घटनाओं, क्रियाओं, परिणामों के सुख–दुःख का अनुभव करते रहते हैं ।

ध्यान रखें –जब तक यह देह, प्राण, इन्द्रिय, मन का व्यवहार चलता रहता है, तभी तक हमारा साक्षी भाव रहेगा । सुषुप्ति अवस्था में किसी प्रकार की क्रिया नहीं तो वहाँ हमारा साक्षी भाव भी नहीं । हमारा वास्तविक स्वरूप साक्षी–असाक्षीभाव, द्रष्टा–अद्रष्टा भाव से परे अखण्ड, एकरस है । जब कोई संसार का दुःख आ पड़े तब तुरन्त ही अपने द्रष्टा साक्षी आत्म भाव की शरण में मन को छुपा लेना चाहिये ।

जहाँ तक शरीर है वहाँ तक यह आत्म भाव का अभ्यासरूप ज्ञान योग करते रहना चाहिये । समस्त कामना का त्याग कर आत्मा में ही अहं भाव करते रहना चाहिये । इस आत्म भाव में स्थित हो जाना ही जीवन की सबसे बड़ी जीत है, सबसे बड़ी तपश्चर्या है । प्रकृति स्वभावानुसार कर्म तो ज्ञानी अज्ञानी सभी के होते ही रहेंगे । अतः कर्तापन के अहंकार को छोड़कर कार्य करते रहना चाहिये। अहं के परदे को चीर कर आत्म भाव में स्थिर रहो । एक जन्म में यह काम नहीं हुआ तो अनेक जन्म में इस आत्म छत्र की ही शरण में आये बिना जीव का कल्याण, शाश्वत शान्ति नहीं । करने का यही एक बड़ा काम है कि मन को विषयों से, देह भावसे निकाल कर आत्म भाव में ही बारम्बार लाकर बैठाया जाय। एकदिन मातृभाषा सीख जाने की तरह आत्मभाव भी दृढ हो जावेगा।

अपना व समस्त ब्रह्माण्डों के जीवों का वास्तविक स्वरूप तो द्रष्टा, साक्षी, आत्मा, ब्रह्म ही है । अतः बिस्तर से उठते ही प्रश्न करें कि कौन सोया था ? कौन उठा है ? उत्तर मिलेगा मन सोया था, मन ही उठा है, मन को प्रारब्ध ने जगाया है फिर मन ने शरीर को उठाया तब मैं क्या करता था ? मैं तो इन सब क्रियाओं का सब समय साक्षी हुआ देखता रहता हूँ । यह शरीर, मन सोये या जागे, अपना कर्म करे या न करे मैं तो केवल अखण्ड जाग्रत ही रहता हूँ । मेरे स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है। शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के कारण मुझे साक्षी भाव कहना पड़ता है बाकी मैं साक्षी–असाक्षी भाव से परे हूँ । मैं सुख–दुःख से परे हूँ, यही ब्राह्मी स्थिति है । यही स्थिति शरीरान्त तक रखना है यही जीवन् मुक्ति दशा है । यही सहज समाधि दशा है ।

'मैं आत्मा हूँ' यह बात इतनी सत्य एवं सरल है कि एक बालक भी समझ सकता है । जैसे बालक भी जानता है कि मैं अपने जूते,

कपड़े, कलम, पुस्तक, घर, पाठशाला से पृथक हूँ इसी तरह समझदार भी समझले कि मैं शरीर, प्राण, मन, बुद्धि से पृथक् हूँ ।

प्रत्येक बदलते हुए वस्तु में एक अपरिवर्तनशील मूल वस्तु बनी रहती है । चूड़ी, चैन, अंगुठी बदलने वाली आकृती में अविकारी एक मात्र स्वर्ण ही सत्य है । इसी प्रकार इस बदलने वाले दृश्य जगत् में एक अविकारी अपरिवर्तनशील आत्मतत्त्व है । तुम नाम, रूप विकारी देह पिंजर नहीं हो बल्कि अमाप, अगाध, अनन्त आत्मा हो ।

माता–पिता, मित्र गुरु कोई हमारा कल्याण नहीं कर सकते । सभी मार्ग दर्शक तो हो सकते हैं किन्तु अपना कल्याण अपने ही द्वारा हो सकेगा । अपनी भूख तो अपने ही द्वारा भोजन क्रिया होने पर दूर हो सकेगी । अपना रोग तो अपने उपचार द्वारा अपने को ही औषधि खाने से दूर होगा दूसरे तो सलाहकार सहयोगी ही बन सकेंगे ।

कृपा क्या है ?

अच्छे समय में तो सभी प्रभु कृपा, गुरुकृपा मानलेते हैं किन्तु प्रतिकूल अवस्था आने पर अपनी श्रद्धा, भक्ति बिना डगमगाए वैसी ही बनी रहे वही सच्ची निष्ठा, सच्चि भक्ति, सच्चा प्रेम है । योगी, भक्त, ज्ञानी, कर्मीं सब रोते रहते हैं पर जिन्हें आत्मनिष्ठा जाग्रत हो चुकी है ऐसे आत्मनिष्ठ हर अवस्था में प्रसन्न व साक्षी बने रहते हैं । अपना प्रत्येक कार्य प्रभुमय होना चाहिये क्योंकि परमात्मा ही तो हमारे शरीर, प्राण, इन्द्रिय व मन में विद्यमान ही रहता है, इसलिये हार जीत सभी उसीकी जानता चाहिये । अतः हमें अपना अहंकार पृथक् न रख उसी परमात्मा में अपना अहंकार स्थापित कर देना चाहिये । जब कुछ बुरा लगे तो जानना चाहिये मैंने अपने अहंको परमात्मा में से उठाकर इस एक देह में सीमित कर लिया है । हम अपनी इच्छानुसार परमात्मा को घुमा नहीं सकते, बल्कि हमें परमात्मा की इच्छा में प्रसन्न रहने का अभ्यास करना चाहिये । इस अहं को उठने से रोकना ही सच्चा योग, भक्ति या ज्ञान है ।

जीव व परमात्मा में कोई भेद नहीं है परन्तु भेद मालुम पड़ता है । जैसे मनुष्य एक है, पर उसे कोई पिता, भाई, बेटा, साला,बहनोई, काका, मामा,भतिजा,भान्जा, जमाई आदि नामों से पुकारता है । अथवा समुद्र, जल,लहर यह तीनों तीन नहीं एक ही है । लहर जल है, समुद्र जल है, बर्फ जल है केवल नाम रूप भिन्न–भिन्न है, इनमें जल एक ही है ।

इस द्रष्टान्त में लहर जीव रूप है, समुद्र ईश्वर रूप है एवं जल ब्रह्मरूप सब में एक ही जानो ।

ब्रह्म साकार रूप भी भासित होता है एवं निराकार रूप भी भासित होता है फिर भी परमात्मा को न निराकार ही कहा जा सकता है और न साकार ही कहा जा सकता है । इसीलिये वेद ब्रह्म के बारे में कोई सत्य निर्णय वाणी द्वारा न कह कर उसे नेति–नेति रूप में दर्शाया । जिसे सद्गुरु कृपा से ज्ञान दृष्टि, दिव्य दृष्टि, अलौकिक चक्षु प्राप्त हो गई है, उसे सर्वत्र एक ही परमात्मा दृष्टिगोचर होता है ।

शरीर व मनसे निकालकर अपने अहंकार अर्थात् मैं भाव को आत्मभाव, साक्षीभाव में स्थित करना ही कर्तव्य है । शरीर एक मुर्दा, जड़, शव मात्र है । इसे प्राण व मन उठाकर चलाते, काम कराते हैं । इस शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा मन बुद्धि की प्रत्येक अवस्था को जानने वाला, अनुभव करने वाला मैं हाजरा हजूर हूँ, यह विचार दृढ़ रखना चाहिये । यही मनन, चिन्तन है, यही आत्म साक्षात्कार है । इसी विचार मैं आनन्द है । इसलिये इस मन को हमेशा आत्मा में ही स्थित करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये । अर्थात् मुझ आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी चिन्तन करना श्रेय कारक नहीं है ।

प्रारब्ध के आधिन सबके शरीर है। जब शरीर पर ही हमारा अधिकार नहीं तब उसके सम्बन्धियों से हमारा कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है । शरीर तो पंचमहाभूतों का है । हम तो शरीर से पृथक् हैं एवं पृथक् ही रहते हैं । अपना सच्चा अहंकार आत्मा में ही होना चाहिये । शरीर तथा मन में रखे अहं भाव को वहाँ से निकाल कर आत्मा में ही अहंभाव करना चाहिये जो आनन्द का हेतु है एवं देहाभिमान प्रत्यक्ष दुःख रूप है ।

अपना वास्तविक स्वरूप तो यह शरीर या मन नहीं है । अपना वास्तविक स्वरूप तो परमात्मा है, साक्षी चैतन्य आत्मा है । स्वरूप की

मस्ती बनी रहने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है । मन तो अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है परन्तु परमात्मा जो की हमारा असली स्वरूप है वह किसी को कभी नहीं भूलता है ।

यहाँ एक आत्मा के सिवा अन्य कोई नहीं है तब हम शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि द्वारा अपनी ही सेवा कर रहे हैं । तब किसीको कोई यह अहंकार कैसे बतलावे कि मैंने तेरे लिये इतना दान किया या किसी का उपकार किया । उपकार शब्द को शब्दकोश से निकाल देना चाहिये । इस उपकार शब्द की बदले सेवा शब्द का प्रयोग करे तो इसमें अहंकार की निवृत्ति एवं सरलता प्रकट होती है । यह अहंकार राग–द्वेष उत्प्न कर सुख–दुःख को देने वाला है ।

जगत् में सभी मत, पंथ, संत वन्दनीय है किन्तु अपने साक्षी स्वरूप में मन जुड़ जाय तो सबसे श्रेष्ठ अवस्था है । किसी को भजन, पूजन, जप, तप, ध्यान, योग, भक्ति जो अच्छा लगे करे, हमें तो सब द्वन्दों से परे ही रहना अच्छा लगता है । हमतो इन समस्त साधनों के झन्झटों से परे है । समस्त शंका मन में है मगर मुझ आत्म स्वरूप में कोई शंका नहीं । मैं निःशंक, शान्त स्वरूप हूँ ।

इस सिद्धान्त को चाहे हिन्दु, जैन, बौद्ध, सिक्ख, मुस्लिम, पारसी कोई भी करके देखले उसे शान्ति निश्चित ही मिलेगी । यह ज्ञानामृत तो गुड़, चीनी को खाने जैसा है इसमें किसी जाति, मत, धर्म का कोई भेद बाधा रूप नहीं हो सकता ।

सदा आनन्द कैसे रहे ?

सभी के अनुभव की बात है कि इस शरीर रूप शव को प्राण तथा मन ही उठा कर चलाते एवं काम कराते हैं । यह दोनों शरीर वाहन को चलाने वाले नौकर हैं । मैं इस देह रूप रथ में 'साक्षी' बना सब कुछ जाग्रत से सुषुप्ति तक, जन्म से मृत्यु तक, एक देह से दूसरे देह में प्रवेश होने की क्रियाओं को देखता रहता हूँ ।

देह के गमनागमन से मुझ में आनाजाना नहीं, देह के षट् विकारों से मुझ निर्विकार में कोई विकार नहीं, देह के जन्म–मृत्यु से मुझ अजन्मा अविनाशी आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं । मन के धर्म सुख–दुःख से तथा प्राण के धर्म भूख–प्यास है । मुझ में न सुख–दुःख है और न भूख–प्यास है । यह अनुभव जाग्रत हो गया तो समझो सर्वस्व मिलगया । देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि की क्रियाओं को मात्र देखना ही मेरा स्वभाव है, करना मेरा स्वभाव नहीं है ।

मन जो करे, जहाँ जावे मैं उससे पहले वहाँ विद्यमान रहता हूँ । ट्रेन जहाँ जावे उससे पहले वहाँ लाइन विद्यमान रहती है, अन्यथा ट्रेन वहाँ तक कैसे पहुँच सकेगी ? इसी तरह मन मेरे बिना कहीं छुपकर नहीं जा सकता । मैं मनके प्रकट–अप्रकट सब तमाशा देखता रहता हूँ ।

प्रत्येक को अपना स्वरूप, परमात्मा स्वरूप, आत्म स्वरूप जान उसके साथ प्रेम दृष्टि रखना, प्रेममय व्यवहार करना, दया, क्षमा,

समता भाव रखना चाहिये । राग, द्वेष, ईर्षा, निंदा आदि न करना बल्कि परमात्मा की तरह उस दीन दुःखी, रोगी की भक्ति करना चाहिये ।

भूतकाल को भूल जाओ, भविष्य की चिन्ता छोड़दो । वर्तमान में जैसी परिस्थिति में प्रभु रखे उसी में आनन्द से रहो, उसी में सन्तोष करो । परमात्मा की ऐसी ही इच्छा है तो मुझे भी स्वीकार हैं, मैं क्यों अन्यथा चिन्ता करूँ ? सदा आनन्द में रहने का यह उत्तम विचार है । भूत, भविष्य की चिन्ता में वर्तमान का आनन्द मत नष्ट करो । जो वर्तमान में आनन्द का भोक्ता बन जाता है, वह सदा आनन्द में रहता है क्योंकि वर्तमान सदा रहेगा । भूत लौट आने वाला नहीं है एवं भविष्य अभी दूर खड़ा है वह भी जब वर्तमान बनकर आयेगा, तभी उसका उपयोग कर सकेंगे । अतः हमारे उपयोग में, हाथ में केवल वर्तमान ही हैं उसे आनन्द से, प्रसन्नता से प्रसाद रूप से भोगे । आनन्द हमारा स्वभाव है । स्वभाव को पाने हेतु किसी प्रकार के साधन करने की जरूरत नहीं । क्या चीनी मधुरता पाने हेतु कुछ साधन करेगी ?

बदलती हुई परिस्थिति में शान्ति तभी रहेगी जब आप वर्तमान में सन्तोष करे । उस स्थिति की भूतकाल से तुलना न करे, न भविष्य में क्या होगा उसकी चिन्ता करें, तभी वर्तमान में सन्तुष्ट रह सकेंगे । अन्यथा रोते रहेंगे यह सोच कर कि मेरा धन, पद, चलागया । मेरे पास यह–यह था अब नहीं । अब जो है भविष्य में रहेगा या नहीं । इस प्रकार की व्यर्थ चिन्ताकर वर्तमान के सुख को नष्ट न करें । सब समय स्वरूप चिन्तन करते रहें कि मैं द्रष्टा साक्षी हूँ ।

स्वरूप चिन्तन भी क्या करना, स्वरूप चिन्तन करना भी यथार्थ स्थिति नहीं है । चिन्तन, याद, सुमिरन् अन्य का करना पड़ता है । मैं अपने को क्या याद करूँ ? राजा क्या राजा होने का, मनुष्य क्या मनुष्य होने का चिन्तन करेगा ? यदि राजा चिन्तन न करे कि मैं राजा हूँ तो राजा क्या शुद्र, भिखारी हो जावेगा, मनुष्य क्या पशु व ब्राह्मण का

अन्य जाति का हो जावेगा । ब्राह्मण स्नान से पहले व मल त्याग के बाद, जाग्रत या स्वप्न में ब्राह्मण ही है। इसी तरह जीव हर अवस्था में ब्रह्म ही है ।

एक दिन शरीर जाने को ही है फिर क्या अन्तर पड़ता है आज जावे या कल जावे, तो आज से ही क्यों न सोचलें कि यह चल गया। अब न कोई अपना है न पराया। अपने को जीवित मानने पर ही यह मैं–मेरा का झगड़ा महाभारत शुरु होता है । अतः जीवित अवस्था में ही मर जाना यह सच्चा वैराग्य है । ऐसी मति निरन्तर रहेगी तो मरते समय हंसी खुशी से प्राण आत्मस्थ रहते हुए निकल जावेगा ।

यह देह, मन एवं सम्बन्धी मैं नहीं । मेरे यह विचार करते रहने से मैं सच्चिदानन्द, द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ का भाव जाग्रत होगा । राग, द्वेष समाप्त हो जावेगा । मेरे में राग–द्वेष, हर्ष–शोक, जन्म–मरण, कर्ता–भोक्ता, पुण्य–पाप, बन्ध–मोक्ष, गमनागमन आदि द्वन्द्व नहीं है । जहाँ अपने में देह दृष्टि को उत्पन्न किया, स्मरण किया तो तुरन्त ही अपना–पराया राग–द्वेष, ऊंच–नीच, छोटा–बड़ा आदि द्वन्द्व चारों तरफ से आपको जकड़ लेंगे ।

पूरी गीता, रामायण, भागवत, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद मंत्र मुखस्थ करने की, कंठस्थ करने की, रटने की, पाठ करने की कोई आवश्यकता नहीं । बस एक सूत्र, एक मंत्र, एक महावाक्य में बुद्धि स्थिर करलें कि मैं यह देह नहीं हूँ, मैं केवल साक्षी ज्ञाता, द्रष्टा आत्मा हूँ । चाहे भक्ति करो, योग करो, कर्म करो, जो इच्छा वह करके देखलो किन्तु बिना आत्मज्ञान के सच्ची शान्ति कदापि नहीं मिल सकेगी ।

अतः जब तक जीवन है तब तक शरीर है । समय निकाल नियम पूर्वक बिना भूले अपने स्वरूप का स्मरण करना ही चाहिये जैसे मुस्लिम लोग समय निकाल काम धन्दा छोड़ अपने प्रभु की याद करही लेते हैं । अतः एक घड़ी, आधी घड़ी जरुर बैठें ।

थोड़े में बात यह समझ लेने की है कि रोग अनेक हैं, पर उसका उपचार एक यही है कि देह से अहंता – ममता छोड़ अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा में मनको स्थित करें । इस स्थिति को पाने के लिये आपके योग्य जो साधन अपनाना पड़े वही साधन ठीक है फिर किसी की मत सुनो कि यह ठीक नहीं, यह ठीक है । अतः उठो, जागो अज्ञान निद्रा में अब सोने का समय नहीं है ।

हम शरीर, मन, बुद्धि से पर है, इन सबको जानने वाले साक्षी हैं । यही हमारा लक्ष्य है, यही ध्येय है, यही प्राप्तस्य प्राप्ति है अर्थात् प्राप्त स्वरूप की ही स्मृति रूप प्राप्ति है । इस स्थिति में बारम्बार स्थिति करते रहना ही शान्ति का राज है । जहाँ दुःख, शोक, चिन्ता, भय, लोभ, क्रोध वृत्ति जाग्रत हो तो तुरन्त समझ लेना चाहिये कि मैं आरूढ़ पतित हुआ हूँ, देह भाव में मन उतर आया है । अतः मोह छोड़ देह भाव से निकल साक्षी भाव में बैठ जावें । बार–बार देह भाव से निकालकर आत्म भाव में, साक्षी भाव में मन को जोड़ते रहना ही तप है । मनीराम को देह में मैं भाव करने की आदत पड़ गई है, उस गलत आदत को छुड़ाकर आत्म भाव में रहने का सद् अभ्यास कराना है । इसे जिस साधन से हो अवश्य करे, चाहे ॐ का जप करते रहे, चाहे योग करे, चाहे भक्ति करे, चाहे भजन करे । क्या श्रेष्ठ है इस तर्क में न पड़े ।

ध्यान करना है तो यही एक ध्यान रखना है कि मैं समस्त ब्रह्माण्ड के शरीर से जैसे पृथक् हूँ इसी प्रकार इस मेरे कहलाने वाले शरीर से भी मैं पृथक् हूँ । अपने शरीर को मैं व अन्य शरीर को तू जान सुख–दुःख, राग–द्वेष संसार उत्पन्न होता है । मैं देह नहीं, मैं आत्मा हूँ इस एक विचार को दृढ़ करो तो अपने आप सब ठीक हो जावेगा ।

■■■

स्वरूप में स्थिति ही संसार का त्याग

संसार मनोमात्र है । सुषुप्ति में मन नहीं है तो वहाँ मैं–मेरा तू–तेरा रूप संसार भी नहीं है । तुम स्वयं साक्षी चैतन्य देव हो । इसी भाव में दृढ़ता रखो । मैं इस दृश्य शरीर, मन, वाणी में से कोई एक भी नहीं हूँ । मैं इन सबसे पृथक सबको जानने वाला साक्षी आत्मा हूँ। जब मैं नहीं जानता था, तब भी मैं साक्षी चैतन्य आत्मा ही था, हूँ एवं रहूँगा । यही शाश्वत सत्य है । हम अपने इस द्रष्टा साक्षी आत्म स्वरूप को भूलकर शरीर, मन, बुद्धि में मैं भाव कर व्यवहार में उतरते हैं, इसीलिये सुख–दुःख, राग–द्वेष के चक्कर में पड़ जाते हैं ।

नाम रूप में सत्य बुद्धि होने से एकत्व बुद्धि चली जाती है एवं भेद बुद्धि दृढ़ हो जाती है । समुद्र में लहरे भिन्न भिन्न छोटी बड़ी, आगे–पीछे, ऊपर–नीचे होते दिखाई पड़ती है पर उन समस्त का वास्तविक स्वरूप तो एक जल ही है । जैसे चैतन्य समुद्र में अपने शरीर के सहित समस्त ब्रह्माण्ड के जीवों के शरीर बर्फ के टुकड़ों के समान है । बर्फ जैसे जल से अलग नहीं इसी प्रकार कोई भी जीव या शरीर परमात्मा से पृथक् नहीं है ऐसा जानना ही योग है ''**समत्वं योग उच्यते**''

अपना सम्पूर्ण संसार के साथ एकत्व है, अभेद है, क्योंकि यहाँ एक मेरे सिवा अन्य कोई नहीं है । जैसे स्वप्न संसार में स्वप्न द्रष्टा के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं होता है । यह बात सब कोई सरलता से नहीं समझते हैं, न समझने की इच्छा करते हैं इसलिये इस गुप्त ज्ञान को बाहर

कहने की जरुरत नहीं, हाँ कोई श्रद्धालु समझना चाहे तो उसे कहदें। वह सुनकर माने न माने उसकी मरजी पर छोड़ दे ।

अपने व परमात्मा के बीच किसी प्रकार का भेद नहीं है । क्या अलंकार व स्वर्ण के बीच दूरी हो सकती है ? नहीं ! नाम मात्र की ही दूरी है । यदि दूरी या भेद है तो अलंकार के नाम, रूप का ही है । गहरी नींद में अहंकार नहीं होने से वहाँ हम दो नहीं एक ही है इसलिये वहाँ किसी प्रकार का राग द्वेष, सुख दुःख भी नहीं । अतः द्वैत भाव का त्याग कर अद्वैत भाव में रहना ही इस मनुष्य जीवन की सफलता है । नींद में एकत्व है किन्तु वहाँ अज्ञान रहता है फिर भी आनन्द रहता है । अतः हमें जाग्रत अवस्था में भी एकत्व का अनुभव करते रहना चाहिये ताकि आनन्द बना रहे । जाग्रत का आनन्द ही वास्तविक आनन्द है । सुषुप्ति अवस्था का आनन्द, ध्यान का आनन्द तो एक कालिक शराबी के आनन्द की तरह क्षणिक है ।

जैसे नदी के प्रवाह में बहती लकड़ी अपने दोनों बाजू के पानी को अलग–अलग दिखाती है, परन्तु लकड़ी पानी को अलग नहीं कर सकती इसी प्रकार अपना अहंभाव परमात्मा में भेद दिखाता है कि वह और है और मैं कुछ अन्य हूँ । इस अहंभाव को दूर करने के साधन को ही कर्म, भक्ति, योग एवं ज्ञान संज्ञा दी गई है । जिसको जो अनुकूल लगे वह साधन अपनाले ।

यह जगत् तो कुत्ते की पूंछ की तरह है । अनेको ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा बड़े तपस्वी, सिद्ध ज्ञानी पुरुष हुए, अनेको राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जीसस, नानक कबीर तुलसी जैसे अवतारी, महापुरुष हुए, यह दुनियाँ तो इसी तरह झगड़ालु, ईर्षालु, लोभी, दम्भी, हिंसालु ही रहने की है । इसे आज तक कोई सुधार नहीं सका । हाँ हम अपने को सुधार सकते हैं । हमें अपने को सुधारने की स्वतन्त्रता है । जो यहाँ होता है अपने देह में या अन्य देह के प्रति बस साक्षी की तरह देखते रहना

चाहिये । बिना बोले चुप चाप करते रहो । कहो उसको जो तुमने अपने जीवन में उतारलिया है । उसे कर दिखाना है ।

देह के साथ तादात्म्य बुद्धि न होने पावे तभी जीवन यात्रा सफल मानी जावेगी । ज्ञानी जन अपने शरीर, मन, वाणी, का साक्षी जान जीवन यात्रा सफल करते हैं । जिन्हें यह जीवन यात्रा रूप नहीं लगता है और इस जीवन को ही अपना वास्तविक घर या मन्जिल मान यहाँ अहं–मम करलेते हैं वे सदा दुःखी रहते हैं । वे अज्ञानी देह में मैं भाव कर देह के सम्बन्धियों में मेरा भाव कर राग–द्वेष में पड़कर संसार बन्धन को प्राप्त होते हैं ।

मन, बुद्धि और वाणी के पर एक अगम्य तत्त्व आत्मा है जो सभी को अपने नियम में रखता है । जिसकी प्रेरणा व शक्ति द्वारा सूर्य, चन्द्र, पवन, पानी, पृथ्वी अपना–अपना कार्य करते रहते हैं । उसी आत्मा के साथ अपने व्यष्टि भाव को भी मिला देना चाहिये, तभी जीव को शाश्वत शान्ति प्राप्त हो सकेगी । उसके साथ एक होने के लिये अपने शरीर, मन, वाणी को उसके साथ एक कर देना होगा ।

मनुष्य जीवन का ध्येय क्या है यह बात हजारों, लाखों बार पढ़ा एवं महात्माओंसे सुना है पर अब सुनी हुई बात को जीवन में उतारना है, तभी सच्ची शान्ति है । देह भाव को भुला कर आत्मभाव में मन को स्थित करलेने में ही जीवन कृत–कृत्य हुआ, ऐसा मानना चाहिये ।

जगत् के पदार्थ, लोगों के शरीर, मन, बुद्धि, मेरे या अन्य के यह तो बदलने वाले नहीं है किन्तु मुझे तो अपने देह, मन आदि के अहंकार का त्याग कर मैं साक्षी आत्मा हूँ इस भाव में आने में कोई बाधक नहीं है । मुझमें न कोई दुःख है न कोई राग–द्वेष है । सुख–दुःख, राग–द्वेष यह मन के धर्म हैं, इसमें मेरा न हानि है न मेरा कोई लाभ है । ऐसा दृढ़ विचार मन में आने से सहज रूप में समाधि अर्थात् स्वरूप स्थिति हो जाती है ।

जब हमें अपना स्वरूप ज्ञान नहीं था कि मैं साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ एवं अब सद्गुरु कृपा से जानलिया कि मैं सच्चिदानन्द स्वरूप द्रष्टा, साक्षी आत्मा हूँ । हम तो ज्यों के त्यों एक रस ही हैं इसमें कोई फेर फार कोई अन्तर नहीं । परिवर्तन दृश्य प्रकृति के कार्य देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि में होता है । शान्ति–अशान्ति स्वरूप का चिन्तन मन द्वारा होता है । साक्षीभाव उदय होने से उसी समय मन अमन दशा को बिना योग समाधि, बिना प्राणायाम, ध्यान–धारण के हो जाता है ।

आत्मा का चिन्तन करते ही मन अमन हो जाता है अमनक हो जाता है और देह का चिन्तन करते ही वह मन आत्माकार से हट अनात्माकार हो जाता है । तभी सुख–दुःख राग–द्वेष, काम–क्रोध सताते हैं । गहरी नींद में मन आत्मा में तदाकार हो जाता है इसलिये किसी प्रकार का भेद नहीं रहता केवल आनन्द ही बना रहता है ।

जब–जब समय मिले अपने शान्त स्वरूप का विचार करना चाहिये । कुछ यहाँ न छोड़ने को है और न कुछ यहाँ ग्रहण करने को है । हृदय से अपने को आत्मा स्वीकार करते ही सर्वत्र एक मैं ही मैं रह जाता है फिर पूर्णता ही पूर्णता है । देह में मैं भाव करने से ही दुःख को हम ही निमन्त्रण देकर बुलाते हैं ।

जहाँ या जिसमें हमें मैं भाव, अहं भाव करना चाहिये उसमें ते हम मैं भाव करते नहीं और जिसमें अहं भाव, मैं भाव नहीं करना चाहिये उस अनित्य विकारी शरीर एवं उसके सम्बन्धियों में मैं–मेरा भाव कर दुःखी होते रहते हैं । हमें एक परिवार से व्यष्टिभाव, अहंभाव हटाकर समष्टि जीवों में अहं भाव करना है क्योंकि सभी, जीव परमात्मा की, सन्तान है ।

■■■

प्रेम ही परमात्मा है

जहाँ बदलाहट है, स्थिरता नहीं, बदले की भावना है, अपेक्षा है वह प्रेम नहीं है, वह व्यापार है, लेन–देन की दुकानदारी है ।

अपने को तो सभी के प्रति बिना मांग, बिना बदले की भावना बिना किसी प्रकार की अपेक्षा, प्रंशसा के सब को परमात्मा रूप जान निष्काम भाव से सेवा करनी चाहिये । ब्रह्माण्ड के जीव अपने ही नाना रूप, नाम में विचर रहे हैं । स्वर्णकार की दृष्टि अलंकार पर नहीं स्वर्ण पर रहती है । इसी प्रकार ज्ञानी की दृष्टि नाम, रूप, जाति, आश्रम, सम्बन्धों पर नहीं रहती है, प्रत्युत उनमें छुपे परमात्मा पर या अपने पर ही रह कर सबके प्रति समता व प्रेम का व्यवहार करता है ।

मां का स्वभाव, गुरु का स्वभाव समान है । मां बच्चे की सेवा करती है बदले की भावना नहीं करती, इसी प्रकार ज्ञानी संत सबकी सेवा करता है किन्तु उनसे अपनी प्रशंसा सुनने के लिये कार्य करके वहाँ ठहरता नहीं है । प्रेम में देना ही देना है, लेने की इच्छा नहीं । वह कहकर भी नहीं बतायेगा कि मैंने तेरे लिये इतना किया, तूने मेरे लिये क्या किया ? अपना अधिकार प्रेम करने का है सम्मुख व्यक्ति हमसे प्रेम करे या न करे यह उसका अधिकार है हमें उसकी अपेक्षा भी नहीं करना चाहिये ।

प्रेम ही सत्य है, प्रेम ही परमेश्वर है जिसके हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम जाग्रत हो गया वही सच्चा योगी, सच्चा ज्ञानी, वही सत्यनिष्ठ भक्त

है । भगवान भी अर्जुन को कहते हैं कि तेरा कर्म करने में अधिकार है फल भोगने न भोगने में तेरी स्वतन्त्रता नहीं है। कर्म करने अथवा न करने में जीव स्वतन्त्र है। जीव द्वारा किये हुए कर्म का फल न भोगने में जीव स्वतन्त्र नहीं है ।

आत्मनिष्ठ ज्ञानी सर्वत्र एक निजात्म स्वरूप के ही विभिन्न नाम, रूप, शरीर को देखता है । इसलिये वह सबके प्रति समान प्रेमभाव रखता है । चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल, हाथी हो या गधा, गाय हो या कुत्ता । इसलिये आत्मनिष्ठ ज्ञानी पुरुष सब के कल्याण का ही कामना करते हैं ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुःखभाग्भवेतः ।।

संसार में प्रेम के नाम पर व्यापार चल रहा है, लेन देन हो रहा है । हिसाब दिया लिया जा रहा है । मैंने क्या क्या तेरे लिये किया और तूने मेरे लिये आज तक क्या किया ?

पति के प्रयोजन के लिये पति, पत्नी के प्रयोजन के लिये पत्नी, पुत्र के प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते हैं । अपने लिये ही पति, पत्नी, पुत्र, मित्र, देव, व्यक्ति प्रिय होते हैं ।

स्वारथ लागि करहिं सब प्रिती ।
सुर नर मुनि जन की यह रीति ।।

क्योंकि सबका अपना आत्मा ही अखण्डानन्द स्वरूप होने से वही प्रेम करने योग्य है ।

■■■

वेदान्त क्या सिखाता है

वेदान्त ज्ञान समता, एकत्व का पाठ सिखाता है। जब कोई मनुष्य किसी पक्ष में बन्ध कर विचार करता है तब वह दूसरे के प्रति घृणा उत्पन्न करता है। जो सच्चा वेदान्ती है वह किसी पक्ष में किसी मत में आग्रह नहीं करता है प्रत्युत सभी मत, पंथ अपने ही मानकर एकता समता ही रखता है।

प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप तो आत्मा साक्षी परमब्रह्म ही है। चाहे वह हिन्दु, मुसलमान, ईसाइ, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी ही क्यों न हो। आत्मा सभी धर्मों वालों का एक ही होता है जैसे सभी जीवों का सूर्य, चन्द्र, पवन, पानी, पृथ्वी एक ही है इसी तरह सबका एक ही आत्मा है।

जो मनुष्य हृदय पूर्वक मैं साक्षी–आत्मा हूँ और यह दृश्यमान भिन्न भिन्न प्रतीत होने वाला आत्मा का ही रूप है। इस प्रकार जिसके जीवन में सच्चाई जाग गई उसके लिये योग के यम, नियम, तप, शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान अथवा वेदान्त के साधन रूप शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन सब कुछ सिद्ध हो गये। उसके इन्द्रिय, मन, वाणी, शरीर सब कुछ आत्म रूप हो जाते हैं वह किसी का बुरा नहीं सोच सकता।

शरीर या मन चाहे जिस स्थिति में हो परन्तु अपना वास्तविक स्वरूप साक्षी, आत्मा तो एक जैसा ही रहता है। हम शरीर के, बचपन से आज तक की सभी स्थितियों को, परिवर्तनों को जानते हैं इसलिए हम उससे पृथक् है। मन के नाना विचार, वृत्तियों को हम जानते हैं इसलिए हम उन विचार वृत्तियों से पृथक है, हम प्राण को जानते है इसलिए प्राण से भिन्न है । इस प्रकार जानी गई समस्त वस्तुओं का जानने वाला मैं आत्मा सदा असंग व भिन्न ही हूँ । इस प्रकार आत्मनिष्ठावान सदा आनन्द स्वरूप में रहता है । देह संघात् को मैं मानने वाला सदा दुःखी है।

हे जीव ! सभी संकल्पों का त्याग कर केवल तू आत्म भाव में स्थित हो । अपना वास्तविक स्वरूप आत्मा–साक्षी–चैतन्य तो इस शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, वाणी के धर्मों से पर उनका द्रष्टा मात्र है । शरीर पंच भूतों का कार्य है । तथा देह संघात विकारी होने से तेरा स्वरूप नहीं है । शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, वाणी अपना कार्य करते हैं । उनमें तीव्रता, मन्दता, अन्धता धर्म है किन्तु मुझ आत्मा का तो एक ही स्वरूप है केवल जानना। जानने वाला मैं इन समस्त देह संघात् से पृथक् ही हूँ ।

मैं देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि या पिता–माता भावों सम्बन्धों से रहित अजन्मा असंग आदि हूँ । यह गुप्त बात बाहर संसारियों के आगे बोलने की नहीं है । इस आत्म अनुभव को अपने मन में ही जार प्यार की तरह छुपा कर रखें। व्यवहार काल में बाहर जैसे बोलते आरहे थे, वेसा ही अज्ञानी जैसे भाषा का प्रयोग करें। जैसा अपना कर्म धर्म करते आ रहे थे वैसा करते रहें किन्तु नीति विरूद्ध धर्म, कर्म, खान–पान नहीं होना चाहिये । करेंगे तो उतने अंश में दुःख उठाना पड़ेगा ।

मैं मन नहीं हूँ, यह मन भूल करेगा तो यह मन ही दंड पावेगा, कष्ट पावेगा, दुःखी हो रोवेगा, चिल्लावेगा इसमें मेरा क्या ? जो जैसा करेगा वह वैसा फल पावेगा ।

अपना मन ही देह भाव में जाग्रत होकर द्वैत भाव पैदा करता है इसीलिये दुःख भोगता है । अद्वैत ज्ञान होने पर पशु–पक्षी पेड़ पौधे मनुष्यादि सभी अपना स्वरूप प्रतीत होते रहते हैं। यही मन की धारणा ही सच्ची भक्ति हो रही है । यही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना है । आत्मभाव इतना दृढ़ हो जावे कि उसमें देह भाव, कर्ता भाव कपूर की तरह भस्म हो जावे।

अपना सबका वास्तविक स्वरूप साक्षी–आत्मा–द्रष्टा, परब्रह्म है । यह आत्मा राग–द्वेष, अपना–पराया, सुख–दुःख से पर है । यह मायातीत स्वभाव से भ्रष्ट होकर अवश्व ही देह, मन, बुद्धि में अहं भाव कर बैठा है । जब–जब देहाध्यास हो तब मैं कौन हूँ का डन्डा लगावे तो उसी क्षण स्मरण में आजावेगा कि मैं देह नहीं हूँ, अन्तःकरण नहीं हूँ प्रत्युत देह व अन्तःकरण का साक्षी आत्मा हूँ । जब तक यह साक्षी भाव का स्मरण न जागे तब तक यह प्रश्न पूछते ही रहें कि मैं कौन हूँ ?

हमें मोक्ष प्राप्त करना नहीं, क्योंकि हम स्वभाविक रूप से मुक्त ही है । जैसे अग्नि स्वभाव से ही उष्ण है, उसी तरह बिना प्रयास, बिना साधन के मैं नित्य मुक्त हूँ । केवल मन के द्वारा यह बात भूलादि गई है उस भूले मन को ही स्मृति कराना है । जब इस आत्म स्वरूप में बुद्धि स्थिर हो जाती है तब समस्त कामना, वासना, इच्छा व अहं–मम का स्वाभाविक त्याग हो जाता है, त्याग करना नहीं पड़ता । मैं आत्मा हूँ यही भाव दृढ़ करने का सदा प्रयन्त करना है । यही मुख्य साधन है । और कुछ नया करने का नहीं है ।

जैसे कोई ब्राह्मण भांग का, शराब का नशाकर अपने ब्राह्मण पने को भूल जाता है एवं नशा उतरने पर पुनः अपने ब्राह्मण जाति का स्मरण बिना साधन के स्मरण हो जाता है । इसी प्रकार यह जीव अज्ञान वश देहाध्यास कर अपने वास्तविक ब्रह्म स्वभाव को भूल जाता है । जब

किसी सद्गुरु से आत्मज्ञान हो जाता है तब देहाध्यास निवृत्त हो जाता है ।

प्रातः से निद्रा आने के पूर्व तक देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि वाले अपने संसार में अपने आत्म स्वरूप का स्मरण बना रहना चाहिये । बाहर का संसार दुःख रूप नहीं होता है । अपना अविद्या अज्ञान में बनाया संसार, मैं–मेरा ही दुःख रूप होता है ।

अविद्या क्या है ?

अनित्य में नित्यता को देखना, अपवित्र में पवित्रता देखना, दुःख में सुख को देखना और जड़ में चैतन्य देखने को विपरीत ज्ञान या अज्ञान अविद्या कहते हैं ।

देह और देह के सम्बन्धियाँ तथा धन–सम्पत्ति अनित्य होने पर भी उससे नित्यता का भास होना, सदा रहने वाले मालुम होना यह अविद्या का प्रथम दोष है ।

देह, मल, मुत्र, रज–वीर्य, लार, कफ, मांस, हाड़ से बना है । उसमें क्रीम, पाउड़र, लिपष्टिक् लगाकर, सुगन्धित बनाकर, बस्त्र अलंकार धारण कर, उस में अहंकार करना यह दुसरा दोष है ।

विषय सुख दुःख रूप है, गर्भधारण करना, सन्तान पैदा करना, दुःख रूप है फिरभी उन में सुख बुद्धि करना यह अविद्या का तीसरा दोष है ।

देह अनात्मा है, उसको मैं मानना, अन्तःकरण व शरीर को चेतन मानना यह अविद्या का चौथा दोष है । जिसके कारण यह जीव ८४लाख योनियों में भटकता रहता है ।

■■■

जीवन्मुक्त कौन ?

व्यावहारिक जीवन में ही जिसे अपने साक्षी स्वरूप का स्मरण जाग्रत हो चुका है तथा इस ब्रह्माण्ड में मुझ आत्मा के सिवा अन्य कुछ नहीं है, वह जीवन्मुक्त है । वह सभी बन्धनों से मुक्त है । ऐसा ज्ञानी सभी कर्म प्रारब्धानुसार करते हुए भी मुक्त रहता है । क्योंकि वह देहभाव या कर्ता भाव में स्थित होकर कुछ नहीं करता है । उसने विवेक पूर्वक अपना देहभाव व कर्ताभाव का सम्पूर्ण त्याग कर आत्म भाव में स्थिति प्राप्त करली है । देह भाव से लेकर अन्तःकरण तक वह किसी में अपना मैं भाव अथवा मेरा भाव नहीं जोड़ता है ।

जब तक अन्तःकरण है तभी तक वह जाग्रत काल की क्रियाओं में तथा भोगों में साक्षीभाव करता हुआ रहता है, जब गहरी निद्रा में अन्तःकरण नहीं रहता है तब यह साक्षी किसका बने ? तब साक्षी भाव भी लीन हो जाता है । साक्षी भाव की संज्ञा भी मुमुक्षुओं को समझाने के लिये कही है ।

साधक प्रथम भगवान को स्वामी सेवक भाव में उपासना करते हैं फिर आत्म भाव–साक्षी भाव में उपासना करते हैं व अन्त में वह साक्षी परमात्मा मैं ही हूँ इस तरह अभेद रूप में उपासना करते हैं। अन्त में भेद–अभेद भी उठाकर सब भावों का त्याग कर शान्त स्वरूप में स्थित हो जाता है । मन, वाणी अपने वास्तविक स्वरूप तक नहीं पहुँच पाते । मन, वाणी का बखान सब करते हैं किन्तु मन, वाणी अपने आत्म स्वरूप का बखान नहीं कर सकते । वाणी द्वारा अपनी महिमा सुनाने वाले हमारी

प्रंशसा करने वाले हमें नीचे गिराने वाले हैं । सिद्धि, सम्पत्ति, यश, कीर्ति आत्म पथसे गिराने वाली है । जहाँ देह भाव भूल कर आत्मभाव जाग्रत करना है, वहाँ यह सिद्धि देहभाव बढ़ाकर अधोगति दिलाने वाली है । अतः साधक को लोगों से अपनी प्रशंसा कभी नहीं सुनना चाहिये। वहाँ से उठकर चले जाना चाहिये ।

जीवन्मुक्त हुए पुरुष की पहचान सब कोई नहीं कर सकते । कोई सूक्ष्म दृष्टि वाला ही कर सकता है । जीवन्मुक्त का मन ब्रह्म का ही ध्यान करता है । उसकी बुद्धि ब्रह्म की स्तुति करती रहती है, वह ब्रह्म के अलावा न सोचता है, न कहता है । उसकी आँखे ब्रह्म को ही देखती रहती है, क्योंकि उसकी दृष्टि में एक ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं दिखता है । जीवन्मुक्त पुरुष चलता है तो वह ब्रह्म की ही प्रदक्षिणा करता है ।

जीवन्मुक्त का क्रोध, क्षमा का रूप लेता है । लोभ, सन्तोष का रूप लेता है । कपट, सरलता का रूप लेता है । मोह, प्रेम का रूप लेता है । षड्रिपु षड् मित्र का रूप लेता है ।

जीवन्मुक्त ज्ञानी को अन्धा, बेहरा, मूक, लूला, लगंडा तथा नपुन्सक संज्ञा वाला भी कहा जाता है ।

अन्धा: वह एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है । इसलिये वह देखते हुए भी अन्ध समान है ।

बेहरा : वह ब्रह्म चर्चा के अतिरिक्त कोई अन्य संसारी चर्चा नहीं सुनता है इसलिये सुनते हुए भी बेहरे के समान है ।

मूक : वह एक ब्रह्म तत्त्व के अतिरिक्त अन्य कथा नहीं करता है इसलिये वह बोलते हुए भी मूक के समान है ।

लूला : वह जीवन निर्वाह के आवश्यक कर्म करते हुए भी भेदमूलक सकाम कर्म यज्ञ, माला, पूजा, होमादि नहीं करता है । इस कारण हाथ होकर भी लूला है ।

लगंडा : उसके लिये कोई गन्तव्य स्थान नहीं इसलिये चलते हुए भी लंगड़े के समान है ।

नपुन्सक : उसके कर्म निर्बीज होने से पुनर्जन्म को देने वाले नहीं होते हैं । वह गृहस्थी सन्तान युक्त होकर भी नपुन्सक समान है ।

राजा जनक जीवन मुक्त तथा विदेह मुक्त कहलाये हैं । दोनों मुक्ति भिन्न रूप है किन्तु दोनों में आत्मा का अनुभव समान है ।

जीवन्मुक्त अर्थात् जिसे जीवित अवस्था में ही ऐसा अनुभव हो चुका है कि शरीर, मन, वाणी के व्यवहार होने पर भी इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं केवल इनका साक्षी आत्मा इन सबसे सर्वथा पृथक् ही रहता हूँ।

विदेह मुक्त अर्थात् जिसकी समस्त वृत्तियाँ शान्त हो चुकी है । देह होते हुए भी वह अपने को देहातीत जानता है । तथा देह के साथ किसी प्रकार की अहंता–ममता से रहित रहता है ।

जीवन्मुक्त ज्ञानी कर्म करने में डरता नहीं । साक्षी भाव में सब कर्मों को होते देखता रहता है । जबकि विदेह मुक्त कर्म में प्रवेश नहीं करता है । राज योग का आश्रय लेकर आत्मा का अनुभव करता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता रहता है ।

वास्तव में साक्षी ही जीवन्मुक्त है तथा विदेह मुक्त भी है । जिसकी आत्म निष्ठा जाग्रत हो गई वह जीवन्मुक्त है, या विदेह मुक्त है हमें यह भेद करने की जरूरत नहीं है ।

शरीर, वाणी, और मन हमें संसार की सेवा करने के लिये मिले हैं उसके द्वारा अपने ही अन्य रूपों की सेवा करना चाहिये । जब हम आत्म रूप में सर्व है, तब अपने स्वरूप की सेवा करना चाहिये । फिर राग–द्वेष कहाँ ? जहाँ एक देह को सच्चा माना वहीं अपना–पराया, राग–द्वेष, सुख–दुःख के फन्दे में जीव फंस जाता है ।

■■■

वास्तविक ध्यान क्या है ?

संसार में प्रत्येक प्राणी अखण्डानन्द पाने की इच्छा करता है । दुःख किसी प्रकार का किञ्चित् भी नहीं चाहता है । परन्तु ऐसा नित्य सुख तो केवल आत्मा में ही है । इसके लिये हमें आत्मस्थिति को प्राप्त करना होगा । आत्म स्थिति अभी हमारी नहीं है, कुछ साधन करके प्राप्त करना होगा ऐसी धारण भी नहीं रखना है । हम नित्य आत्मा में ही स्थित है । सभी प्राणी जन्म से मृत्यु तक आत्मा में ही स्थित रहते हैं । तो फिर हमें आनन्दानुभूति क्यों नहीं हो रही है ? उसका कारण यही है कि हमारा मन आत्म भाव में स्थित न होकर देहभाव में स्थित है । हम कुछ भी करें हमारा ध्येय तो आत्म स्थिति ही होना चाहिये । ध्यान भी इसीलिये किया जाता है कि हमारा मन देहभाव से हट कर आत्मभाव में दृढ़ता करे ।

हम चाहे ध्यान करें या न करे किन्तु हमारा वास्तविक स्वरूप साक्षी भाव तो ज्यों का त्यों बना ही रहता है । जहाँ अन्तःकरण है वहाँ तक साक्षी भाव रहता ही है । जब अन्तःकरण शान्त हो जाता है तभी साक्षी भी लीन हो जाता है । जैसे पुत्र नहीं रहने पर पिता भाव भी लीन हो जाता है, पुरुष बचा रहता है । इसी प्रकार सुषुप्ति में साक्षी नहीं तो फिर आत्मा में साक्षी–असाक्षी कुछ नहीं केवल अपना सत्य चैतन्य आत्म स्वरूप ही रहता है । उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता है । वह

ज्यों का त्यों बना रहता है । चाहे शरीर रहे या चला जावे, मन ध्यान करे अथवा ध्यान न करे पर मैं तो अखण्ड, एकरस समस्त भावाभाव को जानने वाला सदा रहता ही हूँ । यह स्थिति का भान रहना ही साधक की ब्राह्मी स्थिति या प्रज्ञा कहलाती है । जहाँ न जाना होता है, न वहाँ से पृथक् होना किसीके लिये सम्भव है, यही परम पद प्रत्येक जीव का लक्ष्य है, केन्द्र है, उससे पृथक् होने का दूर होने का कोई रास्ता ही नहीं है । पर इस नित्य स्थिति का सब को बोध नहीं होता है। इसे पाने हेतु कुछ करना नहीं यह तो हमारा स्वभाव है, केवल मन इस ओर से बेहोश है उसे ही ध्यान दिलाना है। इसी में बारम्बार मनीराम को लाकर बैठाना है ।

शरीर, प्राण, मन, बुद्धि के द्वारा जो जो क्रियाएँ होती रहती है उसके हम चोबिस घन्टे साक्षी ही रहते हैं । हमारे साक्षीत्व के बिना एक पत्ते का हिलना, खड़खड़ाने का भी भान नहीं हो सकता, एक श्वाँस का भी आना–जाना नहीं हो सकता । अपने साक्षी भाव का ध्यान सभी ज्ञानी–अज्ञानी में निरन्तर बना हुआ ही है । यही वास्तविक योग है, यही सच्ची भक्ति है, यही सच्चा कर्म है । इससे स्पष्ट होता है कि आत्म प्राप्ति के लिये कुछ करने की जरूरत नहीं ।

जब शरीर, मन, बुद्धि में मैं भाव, हूँपना होने लगे तो तुरन्त वहाँ से अहं भाव 'मैं हूँ' भाव को हटा आत्मा हूँ भाव की स्मृति कराते रहना चाहिये । 'आत्मा' में, 'स्व' में लाते रहना चाहिये । इस प्रकार आत्मा का सुमिरन होते रहना ही प्रभुदर्शन आत्मदर्शन है । जहाँ कोई अनात्म चिन्तन होने लगे तत्काल मन में प्रश्न करें कि 'मैं कौन हूँ' कहाँ से आया, कहाँ जाने के लिये आया हूँ इस प्रकार विचार करते ही मनीराम सहज सजग हो जावेगा, बाकी अपने आप सब ठीक हो जायगा । परन्तु यह बात बाहर किसी से न कहे केवल अपने मन में ही स्मरण रखें । प्रसंग आवे, कोई श्रद्धा से पूछे तो थोड़ा कहे, अन्यथा चुप चाप मौन रहते हुए अपने साक्षी भाव में स्थिति बनाये रखों । आँख बन्द करने या खोलने

जितना समय भी अपने आत्म स्वरूप में आने के लिये जरूरत नहीं क्योंकि हम कभी अनात्मा हुए नहीं ।

यह परम सत्य बात है कि हमारा वास्तविक स्वरूप आत्मा नित्य है । प्राप्त की प्राप्ति करना अज्ञान से ही कहा जाता है। जैसे कस्तूरी वाले मृग का कस्तूरी को खोजने की तरह । अपना वास्तविक स्वरूप–साक्षी–आत्मा दूर कहाँ हैं ? सरल, सहज बात को, सहज स्थिति को अज्ञानी महात्माओं ने बहुत कठिन असाध्य बता कर साधकों को गुमराह करदिया है, भटकादिया है । आत्म स्थिति लाने के लिये बहुत पंडिताई बहुत विद्वान् होने की जरूरत नहीं । मीरा, कबीर, रामकृष्ण परमहंस, दादू, रैदास, नानक, तुलसी किसी कालेज से फिलासुफी की उपाधि लेकर नहीं आये थे । केवल सरल समझ की जरूरत है कि जिसे हम जानते हैं हम उससे सदा पृथक् हैं इस राज मार्ग पर आँख बन्द कर चले जाओ, इसमें भटकने, भूलने, गिरने की गुंजाइश नहीं ।

आत्मा प्रत्येक जीव का सहज स्वरूप है, उसे पाने कहीं जाना नहीं वह कभी दूर था नहीं, है नहीं एवं कभी हमसे दूर हो भी नहीं सकता । हम आत्मा में ही तो आकाशवत् सदा रहते है आकाश से कोई जीव बाहर नहीं, उसी प्रकार हम आत्मा से कभी बाहर हो नहीं सकते । इसलिये उसे पाना क्या ? यह बात मन द्वारा भूलादि गई है केवल उसे ध्यान कराना है, याद कराना है, ताजा कराना है, ख्याल कराना है ।

सुख–दुःख में मन की दशा समान रहे, साक्षी रहे, राग–द्वेष रहित रहे इससे उत्तम योगी और कौन हो सकता है ? शरीर से कोई योगी नहीं, कपड़े रंगने से मुण्डन करने से या बाल बढ़ाने से कोई योगी नहीं जिसका मन साक्षी भाव में रंगा है वही सच्चा योगी है । लेकिन् वेशधारी योगीयों का मन तो देहाभिमान में अकड़ा–जकड़ा रहता है अथवा हठयोग की कठिन प्रक्रियाओं आसन, प्राणायाम, कुण्डलनी जागरण में फंसा रहता है ।

वास्तविक मुक्ति क्या है ?

मैं स्वयं साक्षी आत्मा हूँ यही स्वाभाविक मुक्ति दशा है, यह बात बुद्धि में दृढ़ता से बैठ जाना चाहिये । मुक्ति पाने की वस्तु नहीं है । यदि साधन द्वारा मुक्ति प्राप्त की जावेगी तो वह इन्द्रिय ग्राह्य विषय की तरह नाशवान होगी । मुक्ति हमारा नित्य स्वभाव है । इसका हमें हर समय अनुभव होते रहना चाहिये । लोग शान्ति की खोज में इधर उधर भटकते रहते हैं पर वे नहीं जानते की शान्त स्वरूप आत्मा हम स्वयं ही है ।

मुक्ति किसी मठ, आश्रम, तीर्थ, मन्दिर, स्वर्ग आदि लोक में नहीं है । मैं स्वयं, साक्षी, चैतन्यात्मा हूँ पर जो हृदय में मान लिया है कि मैं देह हूँ सुखी–दुःखी, राग–द्वेष वाला हूँ इस मान्यता को, इस अहंकार को तोड़ना ही मुक्ति नाम से कहा जाता है । मुक्ति के लिये घर छोड़ जंगल में जाना नहीं ।

जब तक शरीर, इन्द्रियाँ मन है तब तक जहाँ भी जाओ संसार साथ ही चलता है । पर अपने को देह से पृथक् मैं अलिप्त, असंग, आत्मा हूँ यह दृढ़ निश्चय ही मुक्ति है। मन, इन्द्रिय व शरीर को विषय तरफ ले जावे, उससे आवश्यक काम करावें तथा उसे देखते रहना ही सहज योग है।

यहाँ सब आत्मा है ऐसी दृढ़ निष्ठा हो जाना ही वास्तविक मुक्ति है । यह सब ब्रह्म है ऐसी दृढ़ भावना कर सब व्यवहार करने से उनमें लिप्त नहीं हो सकेंगे । उठते–बैठते, चलते, खाते, श्वाँस लेते, शयन करते

हृदय में मैं स्वयं–प्रकाश, चेतन, व्यापक आत्म स्वरूप ही हूँ ऐसी वृत्ति को जाग्रत करते रहना चाहिये । आदि अंत से रहित स्वयं प्रकाश ऐसा जो परम पद है, वह मैं स्वयं ही हूँ ।

प्रारब्ध समाप्ति होने तक शरीर इन्द्रिय मन द्वारा अपने भिन्न भिन्न रूपों की निष्काम भाव द्वारा सेवा करते रहना चाहिये । कर्तव्य कर्म से भाग कर गृहस्थाश्रम का त्याग कर जंगल चले जाना सच्चा संन्यास नहीं है। संन्यास अन्दर की अवस्था है । बाह्य क्रिया का त्याग संन्यास नहीं है । देह भाव का त्याग ही संन्यास है ।

साधक को व्यक्तिगत देह अहंकार का त्याग कर समष्टि शरीरों में अपने अहंकार को जोड़ देना चाहिये । जैसे सारा संसार व उनमें रहने वाले शरीर दृश्य है, इसी प्रकार मेरा शरीर भी मुझमें भिन्न व दृश्य है । इस प्रकार देह से अहंकार निकालकर आत्मा में अहंकार को जोड़ना ही मुक्ति है । सबको परमात्मा रूप जान बदले की भावना न करते हुए मन, बचन एवं कर्म द्वारा सेवा करते रहना चाहिये । राम, कृष्ण, जनकादिको ने भी कर्तव्य कर्म का त्याग नहीं किया । प्रत्युत समाज के लोगों को अपने आचरण द्वारा कर्तव्य पालन की शिक्षा देते रहे । दूसरे का भाव रख कर सेवा नहीं करना है प्रत्युत अपने ही स्वरूप की सेवा करता हूँ ऐसा मनोभाव होना चाहिये । शरीर, इन्द्रिय, प्राण द्वारा सेवा होती रहे और मन आत्म भाव में लगा रहे यही करते रहना है ।

मैं साक्षी सर्वत्र सर्वरूप में हूँ यह धारणा दृढ़ हो जावे तो फिर अन्तःकरण अपने आप नष्ट हो जाता है, मन अमन हो जाता है, प्राण जो वायु स्वरूप है, वह वायु में मिल जाता है । किन्तु जिसका अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहंकार तथा पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण रूप सूक्ष्म शरीर नष्ट नहीं हुआ उस सूक्ष्म शरीर को अपने कर्मानुसार पुनः नूतन शरीर धारण करना पड़ता है । मृत्यु पर यह सूक्ष्म शरीर ही निकल कर जाता है व पंच भूत रचित जड़ शरीर वहीं पड़ा रहता हैं, आत्मा में जाना आना तो है नहीं ।

हे आत्मन ! तू साक्षात् परब्रह्म है । शरीर, मन, बुद्धि को मैं मान लेने से ही चारों तरफ से अशान्ति के बादल घेर लेते हैं । तू खुद ही आत्मा में से अहंभाव हटा कर इस अनात्म शरीर, मन में अहं भाव कर राग–द्वेष के फन्दे में फंस जाता है । तू खुद साक्षात् है इसलिये साक्षात्कार की खोज करना अज्ञान ही है । अनित्य विकारी विनाशी देह, मनादि में मैं भाव करना ही बन्धन का हेतु है । किसी चल रूप वस्तु में मैं भाव करने की जरूरत नहीं है । अपने अचल, साक्षी आत्म स्वरूप में रहना ही साक्षात्कार या स्थितप्रज्ञावस्था है ।

जिसकी सत्ता से पदार्थों का अस्तित्व भासमान होता है वह परमात्मा है और वह तू स्वयं है । जैसे स्वप्नावस्था में जो भी स्वप्ननगर, स्त्री, पुरुष, मित्र–शत्रु, भासमान होते हैं वह सब एक स्वप्न द्रष्टा ही है । श्वप्न में जो दिखाई पड़ता है उसका अस्तित्व अन्य नहीं स्वप्न ही है ।

द्वैत का वर्णन प्रारम्भ में होता है । उसे महावाक्य तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म आदि महावाक्यों के विवेक पूर्वक श्रवण, मनन द्वारा दूर कर दिया जाता है । मैं आत्म ब्रह्म हूँ इस विचार से ही कल्याण होता है । हमारी जो आनन्द की खोज है, वह हमारे लिये नहीं की जाती । आनन्द की खोज मन के लिये होती है । हमारा तो स्वभाव आनन्द ही है ।

मैं आनन्द की तलाश किसी अन्य में करता हूँ कि वह मुझे आनन्द देगा तो यह भिखारी बनना ही कहलावेगा । मैं तो राजाओं का राजा बादशाहों का बादशाह हूँ । संसारी लोग तो नाना कामनावश भिखारी है उनसे मुझे कुछ नहीं चाहिये । किसी देवी–देवता से भी याचना करना आत्म प्रभु का अपमान ही है ।

कोई भी अध्यात्म प्रश्न का समाधान चाहिये तो प्रथम प्रश्न यही से प्रारम्भ करना चाहिये कि ''तू कौन है'' ? जब समाधान मिलगया कि

मैं आत्मा–साक्षी–परब्रह्म साक्षात् हूँ, वास्तव में जगत् है ही नहीं, मैं ही सर्व रूपों में एक मात्र विद्यमान हूँ। जब मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं तब किसे पाने के लिये और किसका ध्यान करना बन सकेगा ? मेरे द्वारा योगी का ध्यान सिद्ध होता है । योगी तो मेरा ध्यान धरने में सारा जीवन प्रयत्नशील रहती है । मैं स्वयं परमात्मा स्वरूप हूँ इसलिये मुझे किञ्चित् भी प्राप्तव्य रूप नहीं है।

ज्ञानी मेरी ही खोज कर रहे हैं । भक्त मेरी ही उपासना कर रहे हैं । तपस्वी मुझे पाने के लिये ही तप कर रहे हैं । सकामी मेरे द्वारा इच्छित फल पाने के लिये साधन कर रहे हैं । मैं यदि इन देवी–देवताओं से किसी वस्तु की मांग करुँ तो लज्ज्ञा की बात है ।

मैं एक शरीर की चिन्ता क्यों करूँ मेरे तो अनन्त शरीर हैं ? यह एक ब्रह्माण्ड नहीं पर ऐसे तो अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे द्वारा उत्पन्न होते हैं और लय को प्राप्त होते हैं ? यदि मैं किसी से अपेक्षा करूँ, मांग करूँ तो भिखारी कहलाउँ । बादशाह से मिलने की सब इच्छा करते हैं बादशाह को मिलने, पाने की इच्छा हो तो फिर वह बादशाह कैसा ? समस्त ब्रह्माण्ड मेरा चमत्कार है । यह एक शरीर ही मेरा है ऐसा सोचना अज्ञान है प्रत्युत अनन्त शरीर मेरे हैं ।

यह सत्य सुख ब्रह्मविद्या के अभ्यास से ही प्राप्त होता है । इस ब्रह्म ज्ञान के लिये किसी कालेज में जाकर फिलोसुफी की डाक्टरेट की उपाधि लेने की जरूरत नहीं । इसके लिये तो मैं कौन हूँ इस विचार एवं निर्णय करने की जरूरत है ।

''मैं कोन हूँ'' इस निष्ठा को स्पष्ट एवं दृढ़ करने के लिये तो ब्रह्मनिष्ठ सन्तों के ही ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये । जो हमारे आत्मनिष्ठा को दृढ़ करने में सहायक नहीं ऐसे ग्रन्थों को, पुस्तकों को, उपन्यासों को व खबरकागजों को नहीं पढ़ना चाहिये ।

थोड़ी–थोड़ी देर से मैं कौन हूँ इसका विचार करने से तत्काल स्वरूप की स्मृति हो जाती है । स्वरूप की स्मृति होते ही राग–द्वेष, ईर्षादि द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं । अनुभव में आयेगा कि मैं तो साक्षी सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूपं सर्वत्र हूँ । सबका आना–जाना, भाव–अभाव, जन्म–मृत्यु, है किन्तु मैं सर्वदा एक रस रहता हूँ । मेरा अभाव कभी नहीं होता है । खण्डन–मण्डन के झगड़े में पड़ना नहीं वह पण्डितों, शास्त्रियों का काम है । हम जैसे साधारण जिज्ञासुओं के लिये जरूरत नहीं । हमतो ज्ञानी अज्ञानी भावों से पर है ।

मनसे आत्म चिन्तन करते रहो एवं शरीर, वाणी तथा मन से अपने ही अन्य स्वरूपों की सेवा करते रहो । यदि शरीर, मन, वाणी से सेवा न की जावे तो फिर इस शरीर का क्या महत्व ? सभी सच्चे संत सेवा कार्य करते ही रहते हैं । सच्चे सन्त सेवा देते हैं सेवा लेते नहीं । शरीर इन्द्रिय मन कर्म किये बिना एक क्षण भी नहीं रहते तो फिर अच्छा कर्म ही क्यों न करें ?

प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है किन्तु उसकी विस्मृति होने से देहाध्यास ही जीव के दुःखों का कारण है । जब कोई दुःख लगता है या चिन्ता भय सताता है तो जानना चाहिये हम अपने घर से नीचे उतर कर देह भाव, कर्ताभाव में प्रवेश कर लिया है । अतः अपना प्रयत्न देह भाव को भुलाने का होना चाहिये । माला, जप, भक्ति, योग, ज्ञान यह सब देह भाव को भुलाने का ही साधन है ।

साक्षी भाव में अहं जोड़ें

जीव को प्राप्त शरीर जन्म के क्षण से ही श्वाँस–श्वाँस में क्षरण हो रहा है । अतः इस मृत्यु से पूर्व अति पूर्व शिघ्र अपना आत्म कल्याण कर लेना चाहिये इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

जब तक शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि है उनके पीछे मैं साक्षी विद्यमान रहता है इसी साक्षी भाव में दृढ़ता करते रहना चाहिये । साक्षी ही मेरा वास्तविक स्वरूप है । इसी भाव में अहंता, मैं भाव बना रहे तो जीव सब अशान्ति से मुक्ति पा जाता है । जब अन्तःकरण नहीं रहता है तब उस गहरी नींद में साक्षी भी नहीं रहता है पर मैं तो रहता ही हूँ ।

प्रारम्भ में साधक को शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि में से अहं भाव हटा कर साक्षी भाव में अहं भाव करना बतलाया जाता है । जब देह भाव छूट जाता है तब साक्षी भाव की कल्पना भी मिट जाती है। जब जगत् है ही नहीं तब किसके साक्षी ? जब दृश्य साक्ष्य जगत् नहीं तब साक्षी भी नहीं । जब दृश्य ही सत्य नहीं है तब द्रष्टा कैसे सत्य ठहर सकेगा ?

मैं शरीर की समस्त क्रियाओं को एवं क्रिया कराने वाले मन और प्राण को देखने वाला साक्षी चोविस घन्टे हाजरा हजूर हूँ । अर्थात् मैं शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि की समस्त क्रियाओं को जानता हूँ किन्तु मुझे कोई नहीं जानते हैं । मैं शरीर नहीं इसलिये शरीर के कोई सम्बन्धी मेरे नहीं । शरीर नहीं इसलिये जन्म–मरण भी मेरा नहीं । मन नहीं इसलिये सुख–दुःख, बन्ध मोक्ष भी मेरा नहीं । काम–क्रोध लोभ मोह भी मेरा नहीं, तब राग–द्वेष मेरा कैसे हो सकेगा ? मैं प्राण नहीं इसलिये

भूख–प्यास धर्म भी मेरे नहीं । जो कुछ भी होता है घटता है तो देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि में होता है, मुझे कुछ नहीं होता । माँ बाप द्वारा बचपन से जीव को देह के प्रति मैं बुद्धि की आदत डाल दी गई है । देहध्यास दृढीभूत हो गया। लेकिन मेरा सच्चा स्वरूप साक्षी आत्मा है इसी निष्ठा को अधिक से अधिक समय दृढ़ करते रहना चाहिये । देह, प्राण, इन्द्रिय तथा मन बुद्धि से मैं पृथक हूँ । ज्ञानाग्नि द्वारा मैंने इस देहभाव को जला भस्मीभूत कर डाला है । जो मैं नहीं, मेरा भी नहीं, उस पर वस्तु देह का विचार ही क्या करना ? जब मैं देह व मन नहीं तब भय कैसा, राग–द्वेष कैसा ? सुख–दुःख कैसा ? मैं तो अखण्ड एकरस था, हूँ एवं रहूँगा ।

जीव देह व अन्तःकरण में मैं व मेरा बुद्धि कर साक्षी भाव से नीचे उतर आया है । मैं साक्षी आत्मा हूँ इस बात को जीव नहीं जानता था तब भी उसका वास्तविक स्वरूप तो साक्षी चैतन्य ही था जब यह साक्षी भाव भूल जाता है तब भी साक्षी भाव का साक्षी मैं आत्मा तो रहता ही है । अब जीव को करना है तो बस यही एक काम कि देहभाव छोड़ कर आत्मभाव को दृढ़ करते रहना ।

मैं आत्मा हूँ इस भाव को पूर्णरूप से अनुभव करना निर्बीज समाधि है । समाधि–असमाधि, ध्यानादि मन की अवस्था है । इन मनकी अवस्थाओं, वृत्तियों को जानने वाला मैं साक्षी आत्मा इन से पर हूँ । यह श्रद्धा निष्ठा सदा बनी रहना चाहिये ।

जैसे मेरे पास आँख है, मेरे पास कान है, मैं स्त्री हूँ या मैं पुरुष इस बात में कभी संशय नहीं होती । इसी प्रकार मैं आत्मा हूँ इस विषय में निःशंक होना ही ब्राह्मी स्थिति या सहज समाधि है । देह संघात के कर्म स्वाभाविक होते रहे पर उन कर्मों में मैं कर्ता हूँ यह अहं भाव जुड़ने न पावे । सुषुप्ति में अहंकार नहीं तो वहाँ कर्म भी नहीं । प्राण चलते हैं, आँख देखती, कान सुनते है, हाथ, पैर क्रिया में अहं भाव नहीं इसलिये वह कर्म भी नहीं है इसलिये उसे अकर्म कहते हैं। ■■■

शक्ति का नाश नहीं

शून्यता व अव्यक्त में से भ्रूण, भ्रूण से बाल्य, बाल्य में से किशोर, किशोर में से यूवा, यूवा में से प्रौढ़, प्रोढ़ में से वृद्धावस्था, वृद्ध से मृत्यु अर्थात् पुनः अव्यक्त बीज इस क्रम से सृष्टि चक्र चलता रहता है । शून्य का मतलब वस्तु का अभाव नहीं शून्य अर्थात् वस्तु का मूल बीज अवस्था ।

आकाश सृष्टि के चराचर का मूल बीज है । आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी पर सृष्टि । आकाश अनेक बीजों का मूल है । जैसे वटवृक्ष के बीज में ही वटवृक्ष अव्यक्त रूप में छिपा हुआ है, इसीतरह आत्मा में समस्त जगत् अव्यक्त रूप में विद्यमान है । किसी भी वस्तु का कभी आत्यान्तिक नाश नहीं होता है । हमारे दृष्टि में नहीं आता है, इसलिये हम उसका नाश मान लेते हैं ।

जैसे बर्फ का पानी हो जाता है और पानी भाप होकर उठ जाता है, और भाप बादल बन जाता है । बादल से पुनः वर्षा और वर्षा का पानी नदी से समुद्र समुद्र से पुनः बरफ या भाप बन जाती है । पानी का नाश याने भाप का जन्म हमारी दृष्टि में भाप होना पानी का नाश मान लिया जाता है किन्तु किसी भी वस्तु का मूल बीज का नाश नहीं होता है ।

वासना का यंत्र चलता रहता है । जैसे किसी एक व्यक्ति ने पचास वासना अपने जिन्दगी में की उनमें से पच्चीस वासना भोग चुकाथा शेष पच्चीस भोगने के पहले शरीर नष्ट हो गया वे वासना संचित् में चली गई व नूतन जन्म में और नई वासना पैदा हुई उनमें से कुछ वासना भोगली शेष वे सब संचित् में चली गई । इस प्रकार जीव की अनन्त वासना

संचित् पड़ी रहती है । जब आत्म ज्ञान हो जाता है तब वे अनन्त संचित् कर्म ज्ञानाग्नि में जल जाते हैं। और जीव का जन्म–मरण चक्र सदा के लिये समाप्त हो जाता है ।

जन्म मृत्यु की ओर पहला कदम है तथा मृत्यु जन्म की ओर पहला कदम है । जन्म–मृत्यु दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । जन्म–मृत्यु एक वृत्ताकार घटना है । जन्म से मृत्यु आधा वृत्त और मृत्यु से जन्म दूसरा आधा वृत्त है । दोनों मिलकर एक पूरा जीवन वृत्त बनता है । इस विश्व में कुछ भी नष्ट नहीं होता सभी वृत्ताकार घूमता रहता है । जन्म के क्षण से ही मृत्यु का प्रारम्भ हो जाता है । जन्म के साथ ही शरीर किशोर व किशोर युवा की ओर बढ़ रहा है, युवा वृद्ध होता जा रहा है । वृद्ध मृत्यु के मुख में जा रहा है और बृद्ध मरकर जन्म लेने की तैयारी कर रहा है । बनना और मिटना दोनों एक साथ चालु रहते हैं । दिन रातकी ओर जा रहा है, रात की शुरुवात दिन की ओर जा रहा है । जब आप जवान होते हैं तभी आप बूढे हो रहे हैं ।

वर्तमान का सुख दुःख की अेर एवं दुःख सुख की ओर जा रहा है । संयोग के साथ वियोग एवं वियोग के समय से ही भावी संयोग का निर्माण हो रहा है । प्रत्येक दिन अपने आगे पीछे दो रात्रियों से घिरा हुआ है एवं प्रत्येक रात्रि अपने आगे पिछे दो दिनों से घिरी हुई है ।

जहाँ जहाँ विरोध दिखाई देता है वहाँ बहुत गहरे में वे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । शिवजी संहार करने वाले हैं तो वहीं शिव लिंग सृष्टि सृजन का भी प्रतीक साथ ही है । यहाँ अविनाशी के धाम में कुछ भी नष्ट नहीं होता है ।

ॐ पुर्णमदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

■■■

सद्‌गुरु की पहचान

शिष्य बनने के लिये कोई हजारों में एक ही भाग्य से मिलता है लेकिन गुरु बनने, दूसरों को समझाने को लाखों तैयार खड़े अथवा गाँव घूम रहे हैं । अब समस्या यह है कि हम किसे सद्‌गुरु स्वीकारे जिसके द्वारा हमारे मानव जीवन की सार्थकता घट सके ?

बाहर जो वेश भूषा से संत दिखाई पड़ते हैं जिसे देख लोग प्रभावित हो जाते है कि लम्बा शरीर, छह साढे छह फिट, हाथ घूटने से नीचे तक, कपाल पर तेज, दाड़ी, मूछ, जटा लम्बी अथवा मुण्डन, कपड़े, गैरिक, पीले, काले या सफेद या दिगम्बर यह सबतो एक दिन उस संत वेशधारी का प्रारब्ध समाप्ति पर नष्ट हो जाने वाला है । इस प्रकार के संत शरीर के द्वारा हमारा कल्याण नहीं हो सकता । देह के साथ इन्द्रियाँ है वे भी अपनी क्षमता धीरे–धीरे नष्ट होने की दिशा में जा रही है । उनके पीछे मन है वह भी सदा एक जैसा नहीं रहता क्षण–क्षण में घड़ी दो घड़ी में बदलता रहता है । अतः यह संकल्प विकल्प करने वाले चंचल, विकारी मन से भी हमारा कल्याण नहीं हो सकता ।

अब बुद्धि की भी यही दशा है तो अब ऐसे तत्त्व का विचार करना शेष रहा कि जिससे शक्ति लेकर यह शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि अपना–अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं जिसका न परिवर्तन होता है, और न कभी नाश होता है । समस्त ब्रह्माण्डों के शरीरों में यह शक्ति भरपूर समान बनी रहती है जो अविकारी अविनाशी एकरस रहती है, यही निराकार निष्क्रिय शक्ति जो सतघन, चितघन, आनन्दघन है यही

ज्ञान स्वरूप सद्गुरु बनाने के योग्य है, इसी को आत्मा परमात्मा, साक्षी, ब्रह्म, परब्रह्म, सच्चिदानन्द कहते हैं । यही जीव का सच्चा स्वरूप है । यही सबमें वास कर रहा है । तो फिर हे आत्मन् ! इसे तू अपने में ही क्यों नहीं देखता है । भगवान भी कहते हैं हे अर्जुन ! तू ही तेरा गुरु है अतः अपने आत्मा को अधोगति से बचा । बहुत समय से यह बात मन भूलगाया है अतः तू अपने आपको गुरु रूप जान व मन को शिष्य बना कर समझा और सच्ची मुक्ति, सच्चा आनन्द ले ।

जैसे कोई जन्म जात सिंह की सन्तान भेड़ के साथ रहने से अपने सच्चे स्वरूप को भूल जाती है और भेड़ ही मानने लगती है जब कोई उसके यथार्थ स्वरूप का उसे बोध करा देता है कि तू सिंह है भेड़ नहीं तब उसे अपना यथार्थ स्वरूप का स्मरण हो जाता है और भेड़ पने की कायरता दूर हो जाती है ।

जैसे कुन्ती पुत्र कर्ण जन्म से ही सूद पुत्र मानने की भ्रान्ति में पड़ गया जब उसे यथार्थ बोध हुआ कि मैं पाण्डु पुत्र हूँ तभी उसकी गरीबी जाति हीनता की भावना तत्काल दूर हो गई ।

इसी तरह इस जीव की भी यही दुर्दशा हो रही है । क्योंकि जन्म से ही यह अपने असली द्रष्टा, साक्षी, आत्मा ब्रह्म स्वरूप को भूल कर देहाध्यास कर बैठा है । आत्मा परमात्मा जो इसका सत्य स्वरूप था उसे मैं रूप से न जान अन्य रूप समझकर कस्तूरी वाले मृग की तरह इधर–उधर, यह–वह रूप में खोजने में जहाँ–तहाँ भाग रहा है । आश्चर्य तो यह कि घर में बैठा व्यक्ति घर पहुँचने का मार्ग पुछे और कोई उसे पहुँचने का रास्ता बतावे तो वह घर से उठ बाहर घर का रास्ता खोजने चल पड़े जैसी मूर्खता यहाँ हो रही है । गुरु लोग ब्रह्म स्वरूप जीव को ब्रह्म पाने का अनेक प्रकार से कठिन से कठिन रास्ता बता रहे हैं ।

हे जीव ! तू अपने अन्दर ही उस जगद्गुरु को खोज वह सब में सदा विद्यमान है । तू स्वयं ही वह है । आत्म स्वरूप तू स्वयं पूर्ण है तुझे

अपने पाने के लिये कुछ करने की जरूरत नहीं है । यह जानना न जानना, करना न करना सब मन का धर्म है। तो मन की भूल को दूर करने वाले समझाने वाले को हम यहाँ सद्‌गुरु रूप में मानकर श्रद्धा भक्ति करें व उनके 'तत्त्वमसि', उपदेश का 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अयमात्मा ब्रह्म' रूप में निष्ठा करें । इन आत्मदर्शी महाजन के प्रति श्रद्धा भक्ति प्रेम दर्शाने के प्रतीक रूप गुरु पूर्णिमा का महोत्सव मनाया जाता है । अन्यथा जिस दिन आत्मस्मृति जाग्रत हो वही दिन, वही क्षण, वही स्थान गुरु पूर्णिमा रूप है ।

वास्तविक रूप में अपना स्व स्वरूप आत्मा ही गुरु है मन ही शिष्य है उसे बारम्बार देह भाव से हटा आत्मभाव का आदेश देते रहें । जो जन्में नहीं मरते नहीं, आता नहीं जाता नहीं वही अपना आत्मा सच्चा सद्‌गुरु है । जो जन्मे व मरे आय–जाय वह सच्चा सद्‌गुरु अर्थात् परमात्मा नहीं हो सकता ।

'गु' अर्थात् अज्ञान एवं 'रू' अर्थात् अज्ञान का नाशकर ज्ञान का प्रकाश प्रकट करें। जो इन्द्रिय को प्रकाशित करता है, जिसकी शक्ति से इन्द्रियाँ अपना कार्य करती है वह आत्मा ही गुरु है । अतः आप स्वयं सद्‌गुरु हो, स्वयं प्रकाश हो ।

मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सभी को जानता हूँ, प्रकाशित करता हूँ मुझे कोई नहीं जानता, कोई प्रकाशित नहीं करता इसलिये मैं स्वयं प्रकाश हूँ । इस यथार्थ ज्ञान में, अपने यथार्थ स्वरूप में किञ्चित् भी सन्देह नहीं होना चाहिये ।

जैसे व्यक्ति को अपना नाम, जाति दृढ़ रहता है उसमें कभी सन्देह नहीं रहता । गहरी नींद से जगा कर यदि कोई उसके नाम, जाति को पूछे तो वह तत्काल ठीक बता देता है, भूलता नहीं । इसी तरह मैं आत्मा–परब्रह्म हूँ यह बात हृदय में दृढ़ होनी चाहिये । इसी बात की

दृढ़ता के लिये सद्‌गुरु द्वारा सुने महावाक्यों का मनन, निदिध्यासन करने की बारम्बार जीवन पर्यन्त जरूरत रहती है ।

परमात्मा हमसे पृथक् होता तो मार्ग पर चलना पड़ता, पाने का साधन करना पड़ता । 'वह मैं हूँ' 'सोऽहम्', निश्चय हो गया तो लक्ष्य स्थल पर पहुँचे ही हैं । लक्ष्य स्थल परमात्मा है और वह परमात्मा मैं हूँ यह देह मैं नहीं हूँ इसमें सन्देह नहीं करना है ।

शास्त्र स्वाध्याय अपने स्वरूप के प्रति दृढ़ता लाने के लिये, निःशंक होने के लिये है । निःशंक होने के बाद हम अपने साक्षी-आत्म स्वरूप में स्थिर रहेंगे तो सब समय आनन्द ही आनन्द मनीराम अनुभव करेंगे की मैं तो नित्य आनन्द नित्य मुक्त हूँ ।

उद्धव भगवान के समीप १२५ वर्ष रहा किन्तु उसे आत्मज्ञान में श्रद्धा रुचि नहीं होने से उसके द्वारा सुनाया गया गोपियों को आत्मसन्देस से किसी को आत्म बोध नहीं हुआ । वक्ता को यदि आत्म बोध जाग्रत नहीं हुआ होगा तो उसके पास जीवन भर सुनते रहो किन्तु श्रोता को आत्मबोध नहीं हो सकता । भगवान श्रीकृष्ण द्वारा सूर्य ग्रहण पर सभी ब्रजवासियों को कुरुक्षेत्र में आत्मज्ञानोपदेश करने पर सभी कृत-कृत्यता को प्राप्त हो गये । अतः श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ही सच्चा सद्‌गुरु हो सकता है।

आपको मुक्ति चाहिये तो प्रथम विचारो कि आपको बान्धा किसने है तब वहाँ से खोलने का प्रयास किया जावे । शास्त्र कहता है जीव सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर का अंश होने से स्वयं सच्चिदानन्द ही है ।

कोई वृक्ष की डाल पकड़ कर लटक जावे तो क्या उसे वृक्ष का डालने पकड़ा है ?'बन्ध्यो कीर मरकट की नाई' अर्थात् तोता, बन्दर अज्ञान से स्वयं को बन्धन में डालते हैं इसी तरह मुक्त जीव स्वयं को देहाध्यास कर बन्ध जाता है । अभी देह से मैं भाव छोड़ दे तो जीव मुक्त ही है । ■■■

स्वरूपानन्द

तुम्हारा स्वरूप मन, वाणी से अगोचर,अकथनीय है। साक्षात सरस्वती भी लिखने बैठे तो भी लिखा नहीं जा सकता । वेद भी लज्ज़ावान् हो नेति–नेति रूप में कथन करता है । ज्ञानी, योगी, साधु, भक्त सब आपका ही गुण गान कर रहे हैं। आप सभी इस तत्व का साक्षात् कर रहे हो, आप सब उसे मैं रूप में समझ चुके हो ।

जब–जब जो–जो क्रिया होती है तब मनसे पूछते रहो कि मैं कौन हूँ ? तो प्रत्येक क्रिया के समय आत्म भाव स्मरण में आता रहेगा । मैं कर्ता हूँ, यह अभिमान जाग्रत होने नहीं पावेगा । याद रहेगा कि क्रिया कराने वाला मन, प्राण, इन्द्रियाँ तथा शरीर मिलकर कर रहे हैं और आपतो साक्षात् 'साक्षी' होकर यह सब क्रिया को देख रहे हो, अनुभव कर रहे हो । इसलिये आप में राग–द्वेष, सुख–दुःख, का स्पर्श नहीं हो सकता । आप स्वयं शान्त स्वरूप हो । शान्ति–सुख खोजने जाओगे तो सुख–शान्ति खो देंगे ।

साधु बन कर कपड़े रंगने से, घर छोड़ जंगल जाने से कुछ अधिक मिलने वाला नहीं । यह तुम्हारा 'साक्षी' भाव भी अन्तःकरण द्वारा क्रिया होने तक है । अन्तःकरण की क्रिया जब नहीं होती है तब तुम्हारा साक्षी भाव भी झूठा पड़ जाता है, परन्तु अन्तःकरण न होने पर भी आपतो सर्वदा हो । आपका ही नहीं ज्ञानी, अज्ञानी भक्त, योगी, अभक्त, अयोगी, सदाचारी, दुराचारी, दानी, भिखारी सभी का नित्य सिद्ध आत्म चैतन्य स्वरूप है । जिसके लिये अज्ञानता वश सभी लोगों की यहाँ–वहाँ, दौड़ा–दोड़ हो रही है । नाना प्रकार की साधना,भक्ति,

कर्म साधन हो रहे हैं । जप, तप, ध्यान हो रहे हैं । जब किसी सद्‌गुरु की कृपा से उन साधन करने वालों को स्वरूप बोध होगा तब वै अपनी मूर्खता पर हसेंगे की जिसे पाने के लिये हम कठिन साधन कर रहे थे वह तो हमे प्रारम्भ से ही प्राप्त था, वह मैं स्वयं ही हूँ ।

आप सभी आनन्द स्वरूप हैं । आप प्रगति–अप्रगति से पर है । आप सभी भावों से पर हैं । आप में समस्त ब्रह्माण्डों की आधार शिला है । अनन्त ब्रह्माण्डों को अपने अन्दर समा कर बैठें हैं । कोई पहुँचा हुआ ज्ञानी, योगी ही आपको पहचान सकता है । अधिकांश लोग अपने–अपने मत मतान्तरों में फंसे पड़े हैं एवं अन्य को भी उसी अन्ध कूप में डालने के लिये साधना शिविर, क्लास चला रहे हैं ।

आप स्वतन्त्रता में विचरो, किसी सम्प्रदाय के बन्धन में किसी अखाडे में मत फंसो । अपने आत्म स्वरूप का स्मरण होने पर आप को भजन, कीर्तन, जप, माला, योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, मन्दिर, पूजा, पाठ सब फीका लगेगा । फिर मालुम पड़ेगा की सभी साधन करने वाले मुझे ही ढूंढ रहे हैं । योगियों का योग, भक्तों का प्रेम, कर्मियों का कर्म ज्ञानियों का ज्ञान सब आप ही हैं । यह परमसत्य बात है । पर आपको तो ऐसे प्रवंचक, कथावाचक, गुरु महात्मा मिले होंगे जो कहते हैं बहुत कठिन है बहुत ऊँचीबात है परमात्मा को पाना । हमने उसे पाया है, हमें मालुम है कितना मुश्किल है वहाँ पहुँचना । आप ऐसे प्रवंचकों की बात में मत आना उनसे दूर अपनी मस्ती में मस्त रहना । अपने को असमर्थ नहीं बल्कि सर्व समर्थ जानना ।

याद रखो ! यह बाहर बोलने की बात नहीं, मन ही मन भीतर समझने की, अनुभव करने की बात है । यह सूर्य, चन्द्र, तारागण सभी ब्रह्माण्ड मेरे अन्दर नृत्य कर मुझे आनन्दित करने प्रकाश रहे हैं । मैं सब को जानता हूँ, मुझे कोई नहीं जानते हैं । यह जानना कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जानना भी दो में होता है जब मेरे सिवा अन्य किञ्चित् भी नहीं तब किसे जानु । राजा, महाराजा, योगी, यति, सन्यासी, स्थावर,

जंगम, पशु–पक्षी, वृक्ष, लता, फल, फूल, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सब नाम रूप वाले मेरे खिलोने हैं ।

तुम केवल एक ही बात का ध्यान रखो कि तुम 'आत्मा' हो । तुम अमुक जात के, अमुक आश्रम के, अमुक डिग्री वाले, अमुक उपाधि वान् हो यह सब भूल जाओ । मैं आत्मा हूँ यह संकल्प जितना अधिक रख सको उतना ही आनन्द है ।

याद रखो ! जन्म से प्रारम्भ कर मृत्यु पर्यन्त तुम्हें जो कुछ माता–पिता, परिवार, समाज एवं नोकरी से प्राप्त हुआ है वह सब मैं नहीं और वह सब मेरा नहीं । इस बात को सत्य निष्ठा से जानलो और जीवन्मुक्ति का आनन्द लो ।

तुम साक्षी आत्मा हो यह दृढ़ निश्चय करो । इस निष्ठा में सभी साधना, क्रिया, भक्ति, योग समागये हैं । यह सूत्र सर्व साधन का मूल है । तुम साक्षी, चैतन्य, अखण्डानन्द स्वरूप सर्व में व्याप्त हो ।

शरीर एक मुर्दा है जिसे प्राण व अन्तःकरण अपनी मरजी अनुसार चलाते रहते हैं । शरीर जन्म लेता है एवं मृत्यु को प्राप्त करता है इसमें अहं भाव करना ही अज्ञान है । अतः यह शरीर मैं हूँ इस भाव का त्याग करो । देह में किसी प्रकार का अहंभाव मत करो । मैंने यह किया, वह किया इस प्रकार का अहंकार कभी मत करो, क्योंकि तुम साक्षी हो कर्ता नहीं हो । अष्टांग योग की कठिन साधना का वेदान्त में इस प्रकार उपयोग किया जाता है ।

पूरक : मैं अपने अन्दर परमात्मा भाव को भर रहा हूँ ।

कुम्भक : मेरे अन्दर परमात्मा के सिवाय कुछ नहीं है ।

रेचक : मेरा देहभाव, कर्ताभाव, जीव भाव, बद्ध भाव सब अहंकार निकल गया है ।

इस प्रकार की भावना करना ही वेदान्त ज्ञान में प्राणायाम का सच्चा रूप है । ■■■

आत्मा की व्यापकता

देह, नाम, रूप सब जीवों के भिन्न–भिन्न है, परन्तु सबका वास्तविक स्वरूप एक आत्मा परब्रह्म है । जैसे चीनी के बने खिलोने को चीनी होने का आशिर्वाद, स्वर्ण से बने अलंकारों को स्वर्ण होने का आशिर्वाद करना यह कोई नूतन तत्त्व की प्राप्ति नहीं है, वे स्वभाव से चीनी व स्वर्ण ही है । इसी प्रकार कोई गुरु जीव को ब्रह्म होने का आशिर्वाद करे की तू ब्रह्म है यह कोई नूतन तत्त्व की प्राप्ति नहीं कहलावेगी । जीव तो ब्रह्म ही है 'जीवो ब्रह्मैव केवलम्' ध्येय तुम स्वयं ही हो । तुम्हें ही भक्त, योगी उपासते, साधते हैं । तुम्हें ही ज्ञानी शोधते है ।

राजा स्वयं राजा होने के लिये पूछे कि मैं राजा किस प्रकार हो सकूँगा ? यह बात जैसे हंसने योग्य है, इसी तरह जीव ब्रह्म स्वरूप होकर ब्रह्म पाने की इच्छा करे व घर में बैठा व्यक्ति घर पहुँचने का मार्ग पूछे तो उसे पागल ही कहा जायगा । इसी प्रकार ब्रह्म में रहकर ब्रह्म को पाने का मार्ग पूछना अज्ञान या पागलपन ही कहलावेगा ।

परमात्मा निकट दूर कुछ नहीं है, जो नहीं जानते हैं उनके लिये दूर से दूर है जो जानते हैं, उनके लिये पास से पास अर्थात् वे स्वयं ही है । जहाँ एक ही तत्त्व है वहाँ पास या दूरी कथन भी भूल होगा । दो में पास या दूरी का माप कहा जा सकता है । एक में शोक, मोह, सुख–दुःख, नहीं हो सकता ।

अग्नि है इस पर राख न जमने दो इसलिये फूंकते रहो । जहाँ भलभलाट जलने लगे तब फूंकने की भी जरूरत नहीं । जब 'मैं ब्रह्म हूँ',

मैं साक्षी हूँ, यह देह भाव की तरह दृढ़ बोध हो जावे तब बारम्बार यह पूछने की भी जरूरत नहीं कि 'मैं कौन हूँ' या मैं ब्रह्म हूँ यह रटने की भी जरूरत नहीं।

शास्त्र कहते है – एक ही परमात्म तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है तब दिखाई क्यों नहीं पड़ता ? तो इसका समाधान यह है कि जब हम स्वर्ण अलंकार देखते हैं तब स्वर्ण को ही अलंकार रूप में देखते हैं इसी प्रकार जब हम जगत् देखते है तब परमात्मा को ही देखते हैं, क्योंकि कारण–कार्य अभिन्न ही दृष्टि गोचर होते हैं । जगत् एवं जगदीश दो तत्त्व नहीं हैं। कुम्हार जैसे घड़ा बनाकर अलग रह जाता है, परमात्मा जगत् बना कर अलग नहीं बैठा है, वह स्वयं ही जगत् रूप हो समस्त आकार बन बैठा है । वह सर्वत्र सब में ओत प्रोत है ।

जब चित्र देखते हैं तब कागज साथ ही देखा जाता है । बिना कागज के चित्र नहीं देखा जा सकता । परन्तु बोलते समय चित्राकार भी उस चित्रका उल्लेख उच्चारण करते हैं कागज का नहीं । इसी प्रकार अलंकार, घड़ा, कपड़े, मकान, बोलते है पर स्वर्ण, कागज, मिट्टी, सूत का उच्चारण नहीं करते हैं। पर वह मूल अधिष्ठान ही अध्यस्त रूप मैं प्रकट हो रहा है । हमारी आंख जब भी किसी वस्तु को देखती है तब उस वस्तु के मूल आधार परमात्मा को भी अवश्य देखती हैं । इसी तरह जब जो इन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करती है, तब वह इन्द्रिय विषय के आधार रूप परमात्मा को ही देखती है । परन्तु बहुत समय से हम अपने असली स्वरूप को भूल गये है इसीलिये दुःखी हो रहे हैं । अतः एक बार अपने सत्य स्वरूप को भली प्रकार जानलो और फिर उसमें दृढ़ता लाने का प्रयास करो ।

प्रतिदिन नियमानुसार आत्म चिन्तन करते रहना चाहिये । जिससे आत्मा में दृढ़ता आवेगी पुराने संस्कार नष्ट होते चलेगें ।

संसार कहाँ है ?

घर छोड़ जंगल में जाकर आश्रम में रहना या कुटिया बनाकर रहना यह माया से मुक्ति नहीं है । कुटुम्ब से दूर हो जाना, संसार से दूर हो जाना नहीं है । यह तो विचारो की घर कौन छोड़कर जा रहा है और घर किसने बनाया था ? घर संसार बनाने वाला तथा उसे छोड़कर जाने वाला तो आपका मन है । वह तो आपके साथ ही जा रहा है । मटेरियल, सामग्री तो साथ है, वह जहाँ जावेगा नया संसार मकान बनालेगा । महल छोड़ विस्तार वाला आश्रम बनालेगा । सन्तान छोड़ वहाँ जाकर शिष्य शिष्याएं बनालेगा ।

गाँव, नगर, महानगर, जिला, प्रान्त, देश, विदेश में कितने लोगों के मकान गिरते, डूबते है, कितने के घरों में अग्नि से गाँव तक भस्म हो जाता है, कितने घरों में चोरी होती है, कितने की हत्याएँ हो रही है, कितने की लड़की या पत्नी का हरण होता है, कितने अपनी मौत मर रहे है परन्तु उनके लिये आपको दुःख नहीं होता, उनके लिये आप रोते नहीं, हर्ष–शोक क्यों नहीं मनाते हैं ? उसका उत्तर यह है कि उनको हमने अपना नहीं माना है । अस्तु जिसको हमने अपना माना है उसमें से कम–ज्यादा होने पर वह हमारा माना हुआ संसार दुःख–सुख देता है ।

जब हम इतने विशाल संसार को अपना नहीं मानते हैं तो फिर एक अपना घर रूप धर्मशाला जिसमें कुछ परिवार रूप यात्रियों के साथ हम रहते हैं उसे भी उस विशाल संसार का ही अंश क्यों न मान लिया

जाय, ताकि उस एक सराय के लाभ हानि हमें हर्ष, शोक के कूप में न डाल सके । जो सम्पूर्ण संसार का होना है वैसा इस एक घर संसार का होगा । यह सोचलें तो सब चिन्ता से माया से, घर छोड़े बिना ही मुक्त हो सकते हैं ।

यदि ममता प्रेम अपनापन करना है तो फिर एक कुटुम्ब के लिये ही क्यों ? समस्त संसार के प्राणी मात्र के प्रति करें। जिससे शान्ति व आनन्द का अनुभव बना रहेगा । कुटुम्ब के साथ ममता न कर समस्त जगत् के प्रति ममता करलो तो ब्रह्म के व्यक्त रूप का अनुभव होने लगेगा । जैसे अलंकारों में स्वर्ण व्याप्त रहता है इसी तरह व्यक्त संसार में अव्यक्त ब्रह्मानुभूति होती रहेगी । फिर किसी से राग–द्वेष नहीं हो सकेगा ।

जंगल में रहने वाले संन्यासी के मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, मत्सर आदि दोष छिपे रहते हैं वहाँ उनके प्रकट होने का अवसर नहीं मिलता है । क्योंकि एकान्त जंगल में जहाँ पशु–पक्षी, वृक्ष, लता के सिवा कुछ नहीं तब किसको देख काम, क्रोध, लोभ, मोह जाग्रत हो सकेगा ? हमारे मन के अकाम, अक्रोध, अलोभ, असंगता की सच्ची परीक्षा तो घर गृहस्थ के बीच रहने वाले को क्षण–क्षण में होती रहती है कि मेरे अन्दर षड्‌ शत्रु हैं या निकल गये ।

घन्टे दो घन्टे की योग साधना हमें नहीं करना है बल्कि चोविस घन्टे के लिये साधन भजन चिन्तन में डूबे रहना है । अनिष्ट कार्य तो करना ही नहीं है बाकी आवश्वक कार्य करते समय भी मन में प्रश्न करे कि कार्य किसने किया और मैं कौन हूँ ? विवेक द्वारा उत्तर मिलेगा कि कार्य कराने वाला मन है तथा करने वाला शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ है और मैं तो कार्य के होने न होने को जानने वाला चैतन्य, साक्षी, परब्रह्म हूँ । इस प्रकार प्रत्येक कार्य में यह त्रिकाल सन्ध्या करते रहने से कर्म में अहं नहीं होगा एवं सत्यात्मा 'मैं' में ही अहं बना रहेगा, यही संसार से मुक्ति है ।

■■■

साधक के लिये साधना

प्रत्येक व्यक्ति यह कहते सुना जाता है कि क्या करें जीवन में इतनी उलझन, व्यस्तता, चिंता, में फंसा है कि साधन भजन के लिये समय ही नहीं मिलता है । जिन लोगों का यह कथन है उन लोगों से पूछा जाय कि भाई ! इतनी व्यस्तता होने पर भी भोजन, शयन, मल, मूत्र के लिये समय निकाल लेते हो या नहीं ? बस इसी तरह परमात्मा के ध्यानार्थ भी थोड़ा समय अनिवार्य रूप से निकाल लिया करे ।

काम छोड़ कर वहीं या एकान्त में निश्चित समय पर निश्चित स्थान पर निश्चित आसन पर निश्चित मंत्र जप, भजन, ध्यान के लिये पहुँच बैठ जावें । शान्त चुपचाप बैठ श्वाँस के आने जाने को ही देखते रहें या गुरु मंत्र का जाप करें । श्वाँस–प्रश्वाँस में 'सोऽहम्' अजपा का सुमिरन करे, उसके अर्थ का विचार करे कि वह सर्वव्यापक परमात्मा मुझ में भी है, 'वह मैं हूँ' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं ब्रह्म हूँ'। मन शान्त होने लगेगा, आनन्दानुभूति बढ़ने लगेगी, समय स्वतः बढाने लग जाओगे । प्रथम हठ कर बैठना होगा फिर सहज दिन चर्या हो जाएगी । ज्ञान दृढ़ हो जाएगा, सभी संचित् कर्म भस्म हो जावेगा ।

मानव के प्रति, समाज के प्रति कर्तव्यता निभाना यह धर्म नहीं है, यह नीति है । धर्म का यथार्थ स्वरूप तो आत्म भाव में तदाकार हो जाना है । जिससे देहाभिमान, देहाध्यास दूर हो जाय । यह धर्म का वास्तविक रूप है ।

अभ्यास व वैराग्य द्वारा मन को वशीभूत किया जाता है । देहभाव से बारम्बार मन को हटा परमात्मा में, सोऽहम् भाव में लगाते रहना अभ्यास है और विषयों को दुःख रूप जान वहाँ से मन को हटाते रहना वैराग्य कहलाता है ।'मैं कौन हूँ' यह हर समय मन में भीतर–भीतर बिना ओठ हिलाये पूछते रहना चाहिये । आत्मा का ध्यान करते रहना, विचार करते रहना, ख्याल करते रहना, याद करते रहना चाहिये । अथवा ओम् का मानसिक जप करो । जो होगया उसका विचार मत करो, भविष्य की चिन्ता मत करो, वर्तमान में सन्तुष्ट रहो । प्रत्येक कार्य में साक्षी बने रहो ।

अविचार से बन्धन है तथा विचार द्वारा मुक्ति है इसलिये सदा विचार करते रहो । बुद्धि से संसार दृष्टि नाश को प्राप्त होगी तब परमात्मा प्रकट हो सकेगा । परमात्मा तो था, है एवं रहेगा । उसका कभी अभाव नहीं हुआ, न है, न हो सकेगा । ज्ञानी अज्ञानी सभी के लिये सूर्य प्रकाश रूप है इसी तरह परमात्मा सबके लिये समान है, केवल समझ का ही भेद है ।

स्वरूप को प्राप्त करना नहीं है, स्वरूप तो प्राप्त ही है । स्वरूप हम हैं ही, उसे ठीक से समझ लेना है, अनुभव करना है । जब हम नहीं जानते थे कि मैं आत्मा हूँ, तब भी हम आत्मा ही थे एवं अब गुरु कृपा से जानलिया कि मैं साक्षी–आत्मा हूँ तब भी हमारे आत्मस्वरूप की स्वभाव की वृद्धि या उन्नति होने वाली नहीं है । वह तो ज्यों का त्यों एकरस सर्वदा से है व रहेगा ।

जब तक प्रारब्ध से देह रहेगा तब तक क्रिया तो होती ही रहेगी परन्तु उनमें हमारा देहाध्यास, अहंभाव न जुड़ जाय इसका विशेष विचार, ध्यान, ख्याल रखना है । इसलिये कार्य के प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में मन ही मन अपने स्वरूप का, साक्षी भाव का स्मरण करते रहना चाहिये ताकि कर्म में कर्ता भाव न होने पावे । अपने को सर्व रूप जानते रहें एवं सर्व व असर्व भाव से भी परे अपने को जानते रहें ।

दिन में एक घन्टे तो अवश्य आत्म चिन्तन, आत्म विचार, आत्म ध्यान, आत्म सुमिरन में निकालना ही चाहिये । जैसे अन्न, जल बिना हमारा जीवन नहीं चल सकता वह किसी भी तरह हम पूरा कर ही लेते हैं उसके बिना चैन, विश्रान्ति नहीं । इसी प्रकार प्रति घन्टे पांच पांच मिनिट ही अपने आत्म भाव, साक्षी भाव चिन्तन हेतु जरूर से जरूर आवश्यक से अति आवश्यक बल्कि परमावश्यक समझ कर निकाले ।

हे जीव ! तू तेरे वास्तविक मूल स्वरूप को पहचान, विघ्न तो आते ही रहेंगे । श्रीराम चन्द्र, श्रीकृष्ण जैसे अवतारी महापराक्रमी, सिद्धों महापुरुषों की जीवन में भी आये, कोई बचे नहीं किन्तु बचने की कला को वे जानते रहे थे । इसलिये विघ्नों का मुकाबला हंसते हसंते करते रहे ।

बड़े कहलाने का प्रयत्न न करो, अच्छे कहलाने के लिये चेष्टा, दिखावा न करो । बल्कि अच्छे बनने की, अच्छे मनुष्य बनने की चेष्टा करो ।

छोटा बने वो हरि पाए । चींटी रेत से, मिट्टी से, चीनी बीन कर खाती है किन्तु हाथी धूल उड़ाता है । बूंद सागर में मिल सागर हो जाती है किन्तु लहरे बड़ी दूर किनारे तक जाकर टकराती रहती है । सहन करने वाले व्यक्ति की आखिर में जीत ही है । यहाँ सभी वस्तु क्षण क्षण में नष्ट हो रही है, अतः किस बात के लिये गर्व किया जाय । स्वयं शरीर ही प्रति श्वाँस जन्म से मृत्यु की तरफ जा रहा है । अतः गर्व न कर नम्र बनो । क्रोधके स्थान क्षमा, घृणा के स्थान प्रेम, कठोरता की जगह करुणा जगाओ ।

■■■

तुम्हीं तो ईश्वर हो

स्वप्नावस्था में तुम्हारा मन ही सड़क, नगर, शहर, ट्रेन, कार, मोटर, हवाई जहाज, जंगल, पर्वत, पशु, पक्षी, मित्र, शत्रु रूप धारण करता है और तुम स्वयं ही उसे द्रष्टा बन देखते हो । इसी तरह आत्मा स्वयं सृष्टि रूप धारण कर स्वयं ही द्रष्टा, साक्षी रूप से देखता रहता है । आत्मा–ईश्वर–परमात्मा ही जगत् रूप है ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' फिर विचार दृष्टि से यह ज्ञान होगा कि मैं ही जगत् रूप में हूँ, मेरे बिना जगत् शून्य है । मेरी सत्ता से जाग्रत जगत् और स्वप्न जगत् सुषुप्ति अवस्था में लय को प्राप्त हो जाते हैं ।

तुम सभी से पृथक् आत्मा रूप हो । आत्मा विश्वव्यापक है और विश्व से पृथक् भी है । तुम देह, प्राण, मन, बुद्धि सर्व से पृथक् हो । सदा साक्षी भाव में स्थित रहो । जैसे क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती आदि खेलो में उस खेल को देखने वाला उससे पृथक् रहता है । उस रेफरी को उस खेल के हार जीत से कोई अहंता–ममता नहीं रहती है । इसी तरह तुम आत्मा का इस देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि की क्रियाओं, अवस्थाओं से कोई अहंता–ममता, लेना–देना नहीं है, तुम केवल इन समस्त क्रियाओं, घटनाओं को देखने वाले भिन्न ही रहते हो । सुबह सन्ध्या यह अनुभव करो कि मैं इन सभी दृश्यों, क्रियाओं को देखने वाला इन सबसे पृथक् हूँ । निरन्तर साक्षी भाव पर रहने का अभ्यास करो । यही सहज समाधि, सहजावस्था, ब्राह्मी स्थिति, आत्म साक्षात्कार है । ■■■

विधिमार्ग

जैसे सिनेमा, नाटक, रामलीला, रासलीला में एक ही व्यक्ति राम–रावण, कृष्ण–कंस,राजा–भिखारी, दानी–भिक्षुक बनता है इसी तरह यहाँ जगत् रूप नाट्यगृह में मैं आत्मा ही नाना रूप धारण कर स्थित हूँ, मुझसे कोई भिन्न नहीं है ।

निषिद्धमार्ग

अथवा निषेध रूप भी अपने को जानते रहो कि 'मैं देह नहीं हूँ'। मैं प्राण नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, मैं बुद्धि नहीं हूँ, मैं अहंकार नहीं हूँ । मैं शरीर नहीं, मैं मनुष्य–स्त्री नहीं हूँ । मैं ब्राह्मणादि नहीं हूँ, मैं ब्रह्मचर्यादि नहीं हूँ, मैं कर्ता–भोक्ता जीव नहीं हूँ, मैं इन समस्त दृश्य अहंकारों से पृथक हूँ ।

राग–द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, भेदभाव द्वन्द्व से रहित बनो। तुम स्वयं आत्मा हो एवं समस्त ब्रह्माण्ड में उसी तरह से व्याप्त हो जैसे पुष्प माला में सुत्र अप्रकट रूप रहता है। जहाँ मैं–तू की भेद रूपी दीवारे टूट जाती है वहाँ समस्त ब्रह्माण्ड मैं रूप हो जाता है । पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, वृक्ष–लता, पुष्प–फल, दूध–पानी, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पर्वत, नदी, ग्राम सभी मैं रूप भासने लगते हैं । जीवन में आनन्द का सागर लहराने लगेगा, जीवन ब्रह्ममय बन जावेगा ।

ब्रह्मभूत : प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ऐसा अनुभव होने लगेगा । फिर निष्काम कर्म स्वतः होने लगेंगे । क्योंकि दूसरे के मान में ही सकामता को जन्म मिलता है । देने वाला या लेने वाला इस प्रकार द्वैत हुए बिना सकामता जाग्रत नहीं होती । सब जगत् जब मैं ही हूँ ऐसी अनुभूति हो गई तब मैं किससे द्वेष करूँ ? किसके लिये लोभ करूँ ? किसको उपदेश कर कल्याण करूँ ? कौन किसकी सेवा करें ? मैं ही अपनी सेवा, अपना कल्याण कर रहा हूँ । जैसे अपने शरीर के किसी भी अंग की सेवा करने में अपनी ही सेवा मानी जाती है इसी प्रकार जगत् की सेवा होने पर वह अपनी ही सेवा मानी जाती है । जगत् के जीवों के साथ, पदार्थों के साथ एकता का अनुभव करना तो पृथ्वी का सबसे बड़ा ज्ञान है ।

यदि भक्ति मार्ग से चलते हो तो ऐसा विचार करो कि जिस प्रभु ने पुरुष के एक वीर्य बिन्दु के करोड़वे अंश से हमारे रहने के लिये यह कितना विलक्षण, सुन्दर, शक्तिवान शरीर का निर्माण किया, गर्भ से बाहर आते ही मां के स्तनों में दूध प्रकट कर दिया, सुन्दर दांत प्रदान कर दिये ताकि दूध समाप्ति पर दाँतों से अन्न ग्रहण कर जीवन रक्षा कर सकें । जीवन निर्वाह हेतु उसने सुन्दर अन्न, फल, दूधादि भोज्य सामग्री बनाई है क्या उसे मेरे अन्तिम श्वाँस तक की चिन्ता नहीं होगी ? इस प्रकार तुम अपने माथे पर रखी चिन्ताओं की गठरी परमात्मा पर छोड़ दो । हर कार्य में प्रभु की याद करो । प्रत्येक घटना को परमात्मा का भेजा हुआ प्रसाद समझकर श्रद्धा से स्वीकार करो । देहाध्यास छोड़ दो एवं साक्षी भाव को अपनालो ।

सभी परमात्मा की सन्तान है । सबके सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख जानो, मेरा–तेरा भेद मनसे विसारदो । द्वेष रहित हो जगत् में रहो ।

ज्ञानी हमेशा कल्याण की दृष्टि से सब तरफ देखता है, सबका मंगल चाहता है, सब को सुखी होने का आशिर्वाद करता है । परन्तु अपनी प्रशंसा या बदले की भावना की प्रतिक्षा नहीं करता ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ।।

उसे चाहे कोई भला कहे चाहे कोई उसे बुरा कहे वह समता में जीता है ।

ज्ञानी साधारण भाव में सामान्य मानव की तरह जीता है, वह असाधारण रूप में रहकर अपना दिखावा नहीं करता और न वह कोई बनावटी रूप धारण करता है ।

ज्ञानी का हृदय व मन भिन्न होता है । वह हर समय अपने मन को साक्षी भाव पर स्थित रखता है । जहाँ भी दृष्टि जाती है, जिस पदार्थ को वह देखता है उसे आत्मा रूप ही जानता है ।

बांसुरी से जो आवाज निकलती है व बांसुरी की नहीं है बजाने वाली की आवाज बांसुरी के माध्यम से बाहार गूंजती है । इसी प्रकार जो शरीर में बोलता है वह चैतन्यात्मा की ही चेतना है, शरीर की नहीं है । नाम, रूप कचरे कूड़े में दृष्टि न कर आत्मा रूपी हीरे पर दृष्टि रखना ही सुख का एक मात्र साधन है । इसके अलावा सुख पाने का अन्य कोई रास्ता नहीं है । जो–जो चीजें दृष्टि में आवे अथवा शब्द सुनाईदे वह सब मैं हूँ ऐसा अनुभव करो तो राग–द्वेष करने का रास्ता ही समाप्त हो जाता है । मेरे द्वारा ही सब बोला जाता है, मेरे द्वारा ही सुना जाता है, बोलने वाला भी मैं हूँ और सुनने वाला भी मैं ही हूँ । अपने को सर्वरूप में सर्वस्थान में देखो तो फिर क्रोध किस पर करोगे ? अपने से छोटा, नीच, पापी किसे बता सकोगे ? भिन्नता कहाँ रहेगी ? किस पर गुस्सा करोगे ?

कोई बांसुरी खोखली, कोई बांसुरी ठीक लेकिन उसमें से निकलने वाली आवाज तो बासुरी की नहीं है, वह तो फूंकन वाले की है । सभी शरीर समान नहीं होते, कोई सुन्दर, कोई साधारण, कोई असुन्दर, कोई छोटा, कोई लम्बा, कोई यूवा, कोई बूढा पर सब शरीरों में चेतना तो एक की ही है । यही अनुभव करो कि वह परमात्मा, वह मैं आत्मा सब में एक समान हूँ ।

सबको आनन्द अपने मनके संकल्प अनुसार मिलता है । कोई खेल में आनन्द लेते हैं, कोई खाने में आनन्द लेते है, कोई गाने में तो कोई नाचने में, कोई राजनीति में, कोई समाज सुधार में, कोई नाटक सिनेमा में आनन्द लेते हैं परन्तु सब आनन्द से प्रभु का आनन्द ही आत्मानन्द सच्चा आनन्द है ।

धन्य संसारी लोगों की दृढ़ निष्ठा को जो हजारों गाली लात डंडा मार खाते रहते हैं फिर भी उनके मन में संसार वालों के प्रति वैराग्य वृत्ति नहीं उठती है, बल्कि उसी में ही घुसते रहते हैं।

व्यापक आकाश के टुकड़े नहीं हो सकते । फिर भी कमरे का आकाश, ड्राईंग रूम का आकाश, बेड रूम् का आकाश, बाथ रूम का आकाश, कीचन का आकाश भिन्न भिन्न कटा हुआ सा दिखता है । इसी तरह अखण्ड ब्रह्म अलग अलग देह में बटा हुआ विभक्त हुआ दिखता है ।

घटाकाश घड़ा फूटने पर मठाकाश में मिल जाता–सा लगता है एवं मठाकाश मकान टूटने पर महाकाश में मिल जाता–सा लगता है । जबकि आकाश अविभाजित अखण्ड ही रहता है । घड़े में रहा आकाश मकान में रहा आकाश, मकान से बाहर आकाश से भिन्न नहीं है । दोनों एक आकाश ही है । इसी तरह ब्रह्म भी अविद्या उपाधि से जीव तथा माया उपाधि से ईश्वर रूप विभक्त हुआ सा लगता है परन्तु ब्रह्म समस्त प्राणियों में, पदार्थों में भीतर–बाहर एक ही है ।

जीव ब्रह्म का अंश होने पर भी अपने असली स्वरूप को भुलाकर देहाभिमानी मैं–मेरा, तू–तेरा ऐसा भेद ज्ञान कर राग–द्वैष, अपना–पराया मान अपने ही कर्म का भोक्ता बनकर जन्म–मरण के चक्कर में भटकता है ।

मुमुक्षु की स्थिति

परमात्मा की भक्ति तीन प्रकार के मनो भावों द्वारा होती है । **मैं** तथा **वे**, **वह** भाव परमात्मा व भक्त में दूरी दर्शाता है । **मैं** तथा **तू** यह भाव परमात्मा व भक्त में समीपता दर्शाता है । **वह मैं हूँ** यह भाव परमात्मा के साथ एकता दर्शाता है ।

जब तक यह तीसरी दशा साधक को प्राप्त नहीं होती है तब तक उसका कल्याण नहीं हो सकता । अभेद में पहुँचने पर ही सच्ची शान्ति प्राप्त होती है, अतः सर्वत्र एक आत्मा को ही देखें ।

स्वरूप स्थिति किसी जीव की किसी अवस्था में खोती नहीं । यह तो मन की स्थिति डांवा डोल होती रहती है । मैं आत्मा तो सदा ज्यों का त्यों अचल ही रहता हूँ ।

साधक प्रायः यही अवस्था को उच्च मानते हैं कि उनका मन हर अवस्था में एक जैसा बना रहे जो कि सम्भव नहीं है क्योंकि जब तक देह रहेगा वहाँ तक मन भी रहेगा और यह मन अपने प्रारब्ध अनुसार बर्तता रहता है । यदि मन का चलना रुक जाय तो शरीर जड़ मुर्दा हो गिर पड़े । जब साधक मैं आत्मा हूँ इस भाव को भूल जाता है तब देह में,मन में मैं भाव कर लेने से मन की स्थिति डाँवाडोल हो ही जावेगी । पहला काम है मन में से **'मैं'** पना निकाल आत्मा में **'मैं'** पना जोड़ देने से सब समस्या हल हो जाती है ।

कोई भी अच्छी–बुरी, अनुकूल–प्रतिकूल सुखरूप या दुःख रूप स्थिति आने पर भी जब 'मैं साक्षी हूँ' यह भाव बना रहता है तो यह सबसे

बड़ी सिद्धि है । शान्ति प्राप्त हो गई तो समझो मन्जिल पहुँच गये । ध्येय प्राप्त हो गया ।

समस्त उपाधियों से आप स्वाभाविक रूप से मुक्त है । कोई भी उपाधि छोड़ने की जरूरत नहीं है । उपाधि रहते हुए उसका मुझमें स्पर्श था नहीं, है नहीं तथा होना भी नहीं, यह बात ध्यान में रखना चाहिये । जो काम होता है वह काम मैं तथा मेरा विचार द्वारा होता है, उसकी चिन्ता नहीं । परन्तु प्रत्येक काम होने के बाद मन में प्रश्न करो कि इस काम को किसने किया ? और काम करने के पहले पूछो कि काम करने वाला कौन है ? यदि ऐसा विचार कर अपने को असंग अकर्ता रूप नहीं जानेंगे तो देहाभिमान, कर्तापन का अभिमान जाग्रत हो बन्धन का कारण बन जावेगा ।

ब्रह्माण्ड के कार्य ईश्वर इच्छानुसार ही चलते हैं तब इस शरीर के कार्य मेरी इच्छा से चल रहे हैं ऐसा मानना अज्ञान ही है । जैसे श्वाँस चलना, शरीर का बढना, भोजन का पचना, अन्दर रस, रक्त, मांस मेद मज्जा हड्डी रज–वीर्य चर्म का होना बचपन, किशोर, यूवा, प्रोढ, वृद्ध, मृत्यु जन्म आदि होना सब प्रकृति के द्वारा होता है, उसमें हमारा अहंकार नहीं होता है कि यह मैंने बनाया ।

अपना हृदय प्रभु की तरह विशाल होना चाहिये जिससे प्रभु व अपनी एकता का अनुभव होता रहे । जगत् दिखाई दे तो प्रभुमय दिखाई दे ताकि राग–द्वेष कभी किसी से न हो सके । दिखाई पड़े तो वह अपना आत्मा रूप ही दिखाई दे ।

जिस जिस पदार्थ को हम जानते हैं अनुभव करते हैं उससे हम जानने, देखने, अनुभव करने वाले पृथक ही रहते हैं । वह जानने वाला, देखने वाला, अनुभव करने वाला इस शरीर, प्राण, मन, बुद्धि से पृथक ही है । चंचल–शान्त, समाधि–विक्षेप, बन्ध–मोक्ष, सब मन के भाव है । मैं कभी असमाधि नहीं हूँ, न होता हूँ तब किसकी समाधि चाहूँ ? मैं सदा

सहज समाधि में अनादि से स्थित हूँ । मेरी स्वरूपाकार समाधि से मुझे कोई विचलित नहीं कर सका ।

साधक को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रथम अपने मन को पांचों इन्द्रियों के विषय की ओर से मोड़कर विवेक बुद्धि से निग्रह करना पड़ेगा । यह काम साधक को स्वयं करना होगा ।

साधक गन्दे, अश्लील गाने, वार्तालाप से कानोको हटाकर सत्पुरुषों के वचन शास्त्र श्रवण, भजन में लगाना होगा । सिनेमा से मन हटा कर सत्संग में जोड़ना होगा । जिह्वा को तमोगुणी आहार से हटाकर भगवान के नैवेद्य रूप प्रसाद को ग्रहण करना होगा । अपने पुरुषार्थ के अलावा गुरुकृपा का आधार लेना पड़ेगा ।

इस प्रकार इन्द्रिय निग्रह करने से वे इन्द्रियाँ मन जो आपके अधोगती के कारण बन रहे थे आपके सच्चे मित्र बन आपके कल्याण के हेतु हो जावेंगे । इन्द्रियों से उपयोग लेना सीखें । यदि वे बेकार होती या केवल पतन का ही कारण होती तो परमात्मा देता ही क्यों ? सद्उपयोग करना आजावे तो वे परमात्म साक्षात्कार में सहायभूत साधन है । गांधीजी अपने सामने तीन बन्दरों की अवस्था वाली मूर्ति रखा करते थे । जो शिक्षा रूप में आंख, कान, मुँह पर अंगुली रख दिखा रही थी । जिनका संकेत है बुरा मत सुनो, बुरा मत देखो, बुरा मत बोलो । कितने ही मुर्ख जीभ काट लेते है, लिंग काट देते हैं, आंख फोड़ देते हैं । जीभ या लिंग में छेद कर रिंग या ताला डाल लेते है, नाक काट लेते है। कान में, नाक में मिट्टि द्वारा छिद्र बन्द कर लेते हैं । इस प्रकार पाखण्ड कर दिखाने से लोगों को प्रभावित किया तो जा सकता है किन्तु जीव का कल्याण नहीं, बल्कि दूर्गती ही होती है । अतः इन्द्रियों का सत् उपयोग कर मुक्ति प्राप्त करने में ही जीव का कल्याण है ।

■■■

स्वरूप स्थिति के उपाय

मन मध्यभाग में है उसके एक तरफ शरीर है और दूसरी तरफ आत्मा है । शरीर से मिलने से मन कहलाता है और आत्मा में मिलने से यह अमन अर्थात् आत्मा ही हो जाता है । मन का अपना आकार स्वरूप नहीं है । जैसे जल को जिस रंग में मिलाओ वैसा ही हो जाता है । इसी तरह मन, देह का चिन्तन करने से देह रूप एवं आत्मा का चिन्तन करने से मन आत्म स्वरूप हो जाता है ।

बारम्बार '**मैं कौन हूँ ?**'का विचार करने से मैं साक्षी आत्मा हूँ यह समाधान मिल जाने से मन का जोर शांत हो जाता है और शरीर के साथ मिल जाने की आदत छूटती चली जावेगी । मन पानी की तरह है । पानी को ठन्डी लगने से बर्फ हो जाता है एवं गरमी लगने से पानी भाप बन जाता है । इसी तरह मन को 'मैं आत्मा हूँ' इस प्रकार के चिन्तन में जोड़ते है तो वह आत्माकार हो जाता है और मन को 'मैं शरीर हूँ' इस भाव में जोड़ते हैं वह शरीर रूप हो जाता है ।

माता, पिता द्वारा मन को जन्म से ही देह के साथ तादात्म्यता सिखायी गई है इसलिये उसे बारम्बार आत्मभाव में लगाने पर भी पुराने अभ्यास से देह भाव में शिघ्र चला जाता है । जैसे पानी उतार की तरफ, ढाल स्थान कि तरफ स्वतः चला जाता है; पानी को ऊपर चढ़ाने हेतु बहुत बल का प्रयोग करना पड़ता है । इसी तरह मन को आत्मा में

जोड़ने हेतु निरन्तर अभ्यास करने की आवश्यकता है । आत्मा की तरफ झुकगया तो फिर उसे देह भाव में ज्यादा ठहरना अच्छा नहीं लगेगा ।

मन किसी विषय में विह्वल हो गया तो चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता है । उस समय भी तुम ज्यों के त्यों अनन्त आत्म रूप ही रहते हो। तुम इन समस्त दोड़ धमाल को जानने वाले ही हो । यही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है ।

मैं नहीं था, तुम नहीं थे, जगत् नहीं था उस समय भी आत्मा–परमात्मा–ब्रह्म ज्यों का त्यों था । यदि वह न होता तो शून्य से तो कुछ उत्पन्न हो ही नहीं सकता । कुछ बीज रूप सूक्ष्म तत्त्व होते हैं तभी उससे कुछ उत्पन्न होता है । जैसे शान्त महासागर में अनन्त लहरे उत्पन्न होकर क्रीडा करती रहती है इसी प्रकार चैतन्य आत्म सागर में अनेक जीव रूप लहरे उत्पन्न होकर जीवन क्रीडा कर रही है किन्तु समस्त जीव रूप लहरों का अधिष्ठान, आधार, सत्य स्वरूप तो आत्मा ही है ।

उत्पत्ति अर्थात् जो अप्रकट था वह प्रकट हुआ । नया कुछ उत्पन्न नहीं हुआ । सागर में लहर कुछ पैदा नहीं हुइ जल ही ऊपर उठा । लहर का शान्त हो जाना कि लहर नहीं जल ही हूँ यह लहर की मुक्ति है । इसी तरह चैतन्य सागर में जीव लहर की तरह है । समुद्र यह ईश्वर भाव रूप है तथा जल ब्रह्म भाव है । लहर जल ही है अन्य नहीं इसी प्रकार जीव ब्रह्म ही है अन्य नहीं । जीव को ब्रह्म होना नहीं ब्रह्म ही है जैसे लहर को जल बनना नहीं, लहर जल ही है ।

लहर यह कहे की मैं समुद्र हूँ यह तो ठीक है किन्तु समुद्र ऐसा नहीं कह सकता कि मैं लहर हूँ । किन्तु लहर व समुद्र यह तो कह सकते हैं की हम जल है । इसी प्रकार जीव अपने को ईश्वर नहीं कह सकता जीव को ईश्वर बनाने या सिद्ध करना अज्ञान है । ईश्वर भी अपने को मैं जीव हूँ नहीं कह सकता क्योंकि जीव अल्पज्ञ तथा ईश्वर सर्वज्ञ है परन्तु

जीव–ईश्वर दोनों अपने को ब्रह्म तो कह सकते हैं, इसमें तो किञ्चत् भी सन्देह नहीं ।

व्यक्ति का अज्ञान अविद्या है तथा ईश्वर की शक्ति माया है । अविद्या में पड़े चैतन्य के प्रतिबिम्ब को जीव तथा माया में पड़े चैतन्य के प्रतिविम्ब को ईश्वर कहते हैं । जीव अविद्या के आधीन है, जब कि ईश्वर के आधीन माया है । जीव भाग से अविद्या तथा ईश्वर भाग से माया निकल जाय तो दोनों एक रूप ही रह जाते हैं । जब कोई सद्गुरु वेद के तत्त्वमसि महावाक्य का भाग–त्याग लक्षणा के द्वारा अविद्या उपाधि एवं चिदाभास के धर्मों का परित्याग कराके शेष रहे जीव, साक्षी, कूटस्थ, आत्मा का सोऽहम् रूप से अर्थात् मैं रूप से अनुभव करा देता है तब यह जीव कृत कृत्य हो जाता है ।

जीव का जगत् कुल साढ़े पांच फुट का है । इस शरीर का भान गहरी नींद में भूलजाता है तो समस्त जगत् का अभाव हो जाता है । मैं नहीं तो जगत् नहीं, मैं हूँ तो जगत् भासमान होता है । यह सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, नदी, पहाड़ सब मेरी सत्ता से विद्यमान है । मेरी सत्ता से सत्तावान है तथा मेरे आनन्द स्वरूपता से प्रिय रूप लगते हैं । यदि मैं सत्, चित् आनन्द रूप न होता तो फिर दृश्य जगत् के अन्दर मेरी अस्ति, भाति, प्रियता न झलक पाती । प्रत्येक पदार्थ में नाम, रूप, अस्ति, भाति तथा प्रिय यह पांच अंश है उनमें नाम, रूप माया अंश है तथा अस्ति, भाति, प्रिय मुझ सच्चिदानन्द के विवर्त अंश है ।

गाढ़ निद्रा में अहं भाव नहीं होता, देहभाव नहीं होता, इसलिये वहाँ किसी प्रकार का दुःख भी नहीं रहता । इसी तरह जाग्रत अवस्था में इस साढ़े पांच फुट शरीर से यदि आप अहंभाव निकाल लें तो फिर दुःख शोक कहाँ रह सकेंगे ? देह भाव हटाने के लिये मैं आत्मा हूँ इस भाव को बारम्बार लाने की आवश्यकता है । आत्म भाव के दृढ़ होने के बाद सहजानन्द की अनुभूति होती रहेगी, यह स्थिति ब्राह्मी स्थिति है ।

साधक को दो बाते करना है– प्रथम अपने को समस्त ब्रह्माण्ड से अभिन्न रूप जानना ताकि राग–द्वेष न हो सके । दूसरा काम–अपने को समस्त दृश्य संसार एवं शरीर से असंग जानो । जैसे मल त्यागने के बाद कोई यह नहीं देखता की किनता वजन है, कैसा रंग है, दुर्गन्ध कैसी है, मल कहाँ रखूँ, मल जो यहाँ था वह कहाँ चला गया इत्यादि । इस तरह यह तुम्हारा–हमारा कहलाने वाला देह, मनादि का विचार करना उचित नहीं । विचार करने योग्य तो यह है'मैं आत्मा परब्रह्म हूँ' और यही जीव का सच्चा स्वरूप है । अन्य कुछ उपाधि वाला मानेगा तो दुःखी अवश्य होगा । देह, मन, बुद्धि का तो पूर्ण रूप से लय ही करदेना चाहिये । यह विचार करने योग्य नहीं है ।

हे जीव ! तू संकल्प विकल्प रहित एक शान्त, अद्वितीय परब्रह्म है इस विचार के आते ही मन अमन हो जाता है, उस वक्त मन नहीं रहता । जो रहता है वह द्रष्टा साक्षी आत्मा है, यही जीव का अपना मूल स्वरूप है इसी में जितनी अधिक स्थिति रहे उतना ही श्रेयकर है ।

देह भाव को पूर्ण रूप से गला दो ताकि अहंकार शून्य हो जाये अथवा अपने को इतना महान मानो कि सम्पूर्ण जगत् उसमें समाजाय, देह दृष्टि न रहे । पूर्ण अथवा शून्य दोनों दृष्टि परमार्थिक दृष्टि से एक ही है । जैसे बर्तन, शीशा, रोज साफ न करने से धूल, जंग, चढ़ जाता है इसी तरह हर रोज मन को आत्म भाव में न बिठाया जाय तो देह भाव की मैल चढ़ जावेगी, प्रत्येक क्षण सावधान रहने का है। यह देहाभिमान कर्तृत्वाभिमान काले नाग की तरह जहरीला है, किस समय यह मन में घूस बैठे इसका कोई भरोसा नहीं । अतः हर समय सावधान रहें ।

भक्तिमार्ग से चल रहे हैं तो इन्द्रियों को वश करने का सरल उपाय यह है कि इन्द्रियों के व्यवहार को प्रभु परायण करदे । प्रभुको अर्पण कर खाओ । प्रभुको अर्पण कर पीओ, प्रभुको अर्पण कर सूंघो, प्रभुको अर्पण कर स्पर्श करो, प्रभु को अर्पण कर श्रवण करो । अर्थात्

परमात्मा की सत्ता द्वारा ही मेरे सब काम हो रहे हैं । परमात्मा ही मेरे में सूनता, स्पर्श करता, देखता, स्वाद लेता तथा सूंघता है । परमात्मा ही मेरे टांगो से चलता है, मेरे हाथों से ग्रहण–त्याग करता है । परमात्मा ही मेरे मन में सोचने की शक्ति एवं बुद्धि में निश्चय करने की शक्ति देता है उसकी सत्ता के बिना मेरा मन संकल्प विकल्प भी नहीं कर सकता । परमात्मा ही मेरे चौदह त्रिपुटियों का प्रकाशक है । इस तरह प्रभु की इच्छा के साथ एक हो जाओ । काम पूर्ण हो तो ठीक काम पूर्ण न हो तो ठीक ।

अहं और मम याने मैं और मेरा भाव हुआ कि जगत् उत्पन्न हुआ । नींद में अहं–मम नहीं होता तो वहाँ किसी प्रकार का दुःख भी नहीं होता । देह से अहं भाव निकलते ही देह सम्बन्धी के प्रति मम भाव साथ–साथ निकल जाता है । यदि मन ने आत्म भाव पकड़ लिया तो देह भाव ढीला पड़ ही जावेगा । अन्तःकरण धीरे–धीरे आत्माकार होने लगेगा । आत्माकार अन्तःकरण ही शुद्ध अन्तःकरण है। शुद्ध अन्तःकरण अर्थात् संकल्प शून्य अन्तःकरण, आत्मा व ब्रह्म एक है । अहं भाव खाली नहीं रहेगा उसे कहीं तो ठहराना होगा । मैं आत्मा हूँ ऐसा आत्मा में अहंभाव हुआ कि मैं शरीर हूँ इस भाव से वह उठ जावेगा । अहं भाव धीरे धीरे गल जायगा । समस्त संसार परमात्मा की सन्तान है यह भावना दृढ़ होने से सबके प्रति प्रेमभाव ही पैदा होगा, दोष दर्शन नहीं हो सकेगा ।

मैं प्रेम स्वरूप हूँ, मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ इस विचार के जाग्रत होते ही मन तदाकार आत्माकार आनन्दमय हो जाता है । मैं आत्मस्वरूप हूँ यह चिन्तन ही मन को आत्माकार बना देता है । कारण कि मन का अपना कोई आकार नहीं जैसे जल को जिस पात्र में रखो वह वैसा ही आकार वाला हो जाता है । इसी तरह मन जैसा चिन्तन करता है वह वैसा ही हो जाता है । लोक में कहते हैं यथा मति तथा गति ।

ज्ञानी हो या अज्ञानी देह रहने तक थोड़ा–ज्यादा अहंभाव तो सबमें रहता ही है । देह के दुःख दोनों को ही लगते है । दोनों को इन्द्रिय के भोग पदार्थ समान रूप से खट्टे, मीठे, कडुवे, गरम–ठन्डे लगते हैं । ज्ञानी संकल्प विकल्प कर दुःखी नहीं होता किन्तु अज्ञानी आत्मबोध के अभाव से दुःखी होता है ।

छोटी भूल को अनदेखी मत करो अन्यथा बड़ी भूल भी होती चली जावेगा । छोटी भूल का तो खयाल ही नहीं रहेगा । झूठे मोह–ममता में अपने मन को फंसाया तो फिर इसे काबू में करना, वहाँ से हटाना मुश्किल हो जावेगा ।

प्रति रात्रि सोते समय हिसाब रखो कि आज कोई भूल, अहंभाव तो नहीं हुआ । यदि हुआ तो फिर उसे कल न करूँ यह दृढ़ निश्चय करो । सुबह उठते ही उस निश्चय को दोहराओ कि मुझे आज यह भूल पुनः नहीं करना है । इसके लिये मुझे जो कष्ट उठाना पड़े, त्याग करना पड़े मैं उसे स्वीकार करूँगा ।

संकल्प विकल्प उठे तो उन्हें दबाओ मत अन्यथा अधिक जोर पकड़ेंगे । विचारो कि मैं इनका द्रष्टा हूँ अथवा यह मेरे सागर की लहरे हैं। यह संकल्प विकल्प मुझसे भिन्न नहीं है, यह उठे तो भले उठे मुझे क्या ?

■■■

सहजावस्था कैसे प्राप्त करें ?

अपने कल्याण करने वाले सद्गुरु के प्रति परमात्मा बुद्धि होना आवश्यक है । श्रद्धावान को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है । ज्ञानवान् ही मोक्ष का अधिकारी होता है ।

परमात्मा एक अखण्ड सत्ता का नाम है वह हर देश, हर काल एवं प्रत्येक कण–कण रूप में विद्यमान होने से वह मेरे स्थान पर, मेरे जीवन में और मेरे रूप में भी अवश्य है । क्योंकि सब देशसे मेरे स्थान पृथक् नहीं, सब काल से मेरा जीवन काल की एक–एक श्वाँस पृथक् नहीं एवं अणु–अणु होने से मेरा रूप उससे अलग नहीं है इसलिये यह विश्वास एवं श्रद्धा करो कि परमात्मा है तो यहाँ, अभी तथा मेरे रूप में ही है । जो यहाँ नहीं, अभी नहीं तथा मेरे रूप में नहीं तब वह अखण्ड नहीं है और जब वह अखण्ड नहीं तो वह परमात्मा भी नहीं हो सकता ।

जो परमात्मा को किसी एक देश में खोजने जा रहा है या मान्यता करता है कि वहाँ होगा यहाँ नहीं वह परमात्मा को एकदेशीय मान परमात्मा की सत्ता को खंडित सिद्ध कर रहा है । अतः परमात्मा को परिच्छिन्न नहीं मानना चाहिये । परमात्मा घट–घट वासी होने से किसी से दूर नहीं सबके हृदय मन्दिर में साक्षी रूप से विद्यमान है ।

जो परमात्मा के नाम का जप कर रहे है, कीर्तन कर रहे हैं, वे भी परमात्मा को अपने से दूर मान रहे हैं । क्योंकि पुकारना उसे पड़ता है जो हम से दूर हो पृथक हो । जब परमात्मा अपने हृदय में ही उपस्थित है

तो उसे पुकारना दूरी का भाव पैदा करता है । अपने आपको पुकारना अज्ञान ही है ।

जो परमात्मा को अन्य रूप में मानते है वह भी परमात्मा की अखण्ड सत्ता को अस्वीकार कर रहे है ।

ज्ञानी पुरुष जाग्रत अवस्था में सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करते रहते हैं, इस प्रकार की साधना से जीव भाव क्षीण होकर व्यापक ब्रह्म भाव दृढ़ होता है । जीव में निर्भयता आती है तथा जीव अपने को जन्म–मरण से रहित अजन्मा–अविनाशी रूप में जान पाता है । जीव अपने अतिरिक्त सभी को जन्म–मृत्यु रहित एक सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अनुभव करता है । जीव यह जान पाता है कि मेरा जन्म नहीं तो कर्म नहीं और कर्म नहीं तो पुण्य–पाप नहीं, पुण्य–पाप नहीं तो स्वर्ग–नरक नहीं, जब स्वर्ग–नरक नहीं तो कर्ता–भोक्ता नहीं और जब मैं कर्ता–भोक्ता नहीं तो बन्ध–मोक्ष भी मुझमें नहीं। इस प्रकार मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वरूप हूँ यह निश्चित हुआ । जब वेद कहता है कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सर्व जगत् ब्रह्म रूप है तो फिर ब्रह्म का अंश जीव ब्रह्म रूप क्यों नहीं हो सकता ? अवश्य ही जीव ब्रह्म है ।

उत्तम सहजावस्था, मध्यमा ध्यान धारण ।
कनिष्ठा प्रतिमा पूजा, तीर्थयात्रा अधमाधम ।।

उपरोक्त सहज अवस्था, सहज समाधि की अवस्था उत्तम है इसमें व्यवहार काल में भी सर्वत्र परमात्मा का अनुभूति होती रहती है । इस अवस्था को पाने हेतु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी सद्गुरु के पास कुछ काल रह कर सत्संग करना होगा । वह सद्गुरु आपको प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण का स्वरूप समझा कर त्रिपुटी से भिन्न त्रिपुटी का प्रकाशक रूप में अनुभव करा सकेगा । जब आप जाग्रत अवस्था में इन तीनों का मन से अहंभाव त्याग कर देंगे तो आपको तीनों से पृथक चैतन्य आत्म सत्ता का मैं रूप से बोध हो जावेगा । जब तक अन्तःकरण है तब

तक साक्षी रूप में आप है एवं जब अन्तःकरण नहीं चौदह त्रिपुटी भी नहीं तब जो है वह आप का सच्चा स्वरूप है ।

परमात्मा को केन्द्र में रखकर जीनेवाले सहजावस्था अर्थात् ज्ञानरूपी अमृत को भोगते हैं । अतः परमात्मा को केन्द्र बनाकर जीवन की परिक्रमा कीजिये । जैसे भक्त मूर्ति को मध्य में रखकर उसकी चारों ओर परिक्रमा करते हैं वह तो एक प्रतीक रूप उपासना है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि अपनी देह रूपि मन्दिर में अन्तःकरण के साक्षी रूप से परमात्मा को रखते हुए जीवन यात्रा पूर्ण करना है । ज्ञान ही अमृतत्व है वहाँ मृत्यु नहीं । जो सहज जीवन जीने का रहस्य नहीं जानता है वह अज्ञानी हर क्षण मृत्यु को भोगता है ।

अतः अपने समस्त कर्मों को भगवान् के समर्पित करदो । खाओ तो प्रभु को समर्पण करो की वही मुझमें खा रहाहै । देखो तो प्रभु देख रहा है । सुनो तो परमात्मा ही मुझ में सुन रहा है । चलो तो परमात्मा ही मुझ में चल रहा है । बोलोतो परमात्मा ही मुझ में बोल रहा है । गाओ तो परमात्मा ही गा रहा है । कर्म करो तो परमात्मा ही मेरे हाथों द्वारा कर रहा है । चलो तो परमात्मा ही मेरे पैरों से चल रहा है । क्योंकि परमात्मा निर्गुण निराकार शक्ति रूप है । परमात्मा में जीना ही सहज अवस्था है ।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु कर्म करही विधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्राण बिनु बास अषेशा ।।
एही सब भाति अलौकिक करणी ।
महिमा जासु जाय नहीं बरणी ।।

■■■

समाधि

प्राणायाम द्वारा नाड़ी शुद्ध कर समाधि को तथा मन की एकाग्रता को प्राप्त किया जाता है, जिसके द्वारा अन्तःकरण में उठने वाले विचार उतने समय के लिये शान्त हो जाते हैं । वास्तव में पूछा जाय तो ऐसी समाधि एक शराब के नशे, भांग के नशे या क्लोरोफाम के नशे से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है । ध्यान भी एक प्रकार नशा है । थोड़े समय के लिये संसार भूल जाता है खूब मस्ती, खूब आराम, खूब हल्का पन लगता है । पर यह अवस्था थोड़े ही समय चलती है । उत्साह मंद पड़ जाने पर वह आनन्द मस्ती उतर जाती है । फिर समाधि के लिये कोई नयी युक्ति सोचना पड़ती है ।

जो समाधि लगती है और छूट भी जाती है वह नित्य सहज समाधि नहीं है। सहज समाधि तो समाधि असमाधि से भिन्न है । इसलिये समाधि करने का मोह भी व्यर्थ है । क्योंकि यह बहुत लम्बे समय के बाद तो किसी को सिद्ध हो पाती है फिर यह अन्तःकरण की एक अवस्था है, जो स्वयं असत्य है, उस अन्तःकरण की एक अवस्था समाधि कैसे नित्य रह सकती है ? समाधि टूटने पर फिर वही शरीर के धर्म, मनके धर्म सताने लगते हैं, पुनः देहाध्यास हो जाता है। उस समाधिवान् के मन में गहरा अहंकार और पैदा हो जाता है कि मैं सबसे महान योगी सिद्ध हूँ । सब अज्ञानी संसारी बद्ध है । मुझे सब कोई प्रणाम करते हैं । इस सिद्ध से कोई बड़ा सिद्ध आ जावे तो मन में ईर्षा होने लगती है बल्कि उसकी हत्या करने तक का कु–विचार उत्पन्न हो जाता

है । इस प्रकार ऐसे सिद्धि प्राप्त कर्ता का अहंभाव बढ़ने से उसका पतन हो जाता है ।

किसी को तेज का अनुभव होता है, परन्तु वे भी अन्धेरे में ठोकर खाते हैं, गड्डे में गिर जाते हैं । अतः ब्रह्म दशा जो प्राप्त नहीं करपाते है उन मन्द बुद्धि वालों के लिये यह हठ समाधि ठीक है किन्तु व्यवहार काल में ब्रह्मभाव चलता रहे उसे सहजावस्था कहते हैं ऐसी समाधि ज्ञान द्वारा ही सम्भव होती है ।

जो सत्ता तीनों काल में एक जैसी विद्यमान रहती हो उसे सत्य कहते हैं ऐसा तत्त्व तो सबका अपना आत्म स्वरूप है । शरीर, इन्द्रिय, प्राण तथा मन, बुद्धि तीनों काल में समान नहीं रहते इसलिये आत्मा नहीं है । क्योंकि यह देह संघात् सुषुप्ति में नहीं रहता है तब विचार करो कि फिर मैं कौन हूँ ? तुरन्त ही अन्दर से उत्तर मिलता है कि मैं शरीर व मन से भिन्न हूँ क्योंकि मैं सुषुप्ति में भी रहता हूँ ।

मैं सत, चित्त, आनन्द, निरन्जन, निराकार, निर्विकल्प, निर्भय, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आत्मा हूँ । यह बोध भी अन्तःकरण की वृत्ति ज्ञान है, जो जाग्रत काल में अभ्यास के अनुरूप कम ज्यादा चलता रहता है और स्वप्न काल में भी जाग्रत के प्रवल अभ्यासी को कभी कभी स्मरण में आति है । किन्तु सुषुप्ति काल में सब वृत्तियाँ लय को प्राप्त हो जाती है । किन्तु इस लय अवस्था का जो प्रकाशक है वही शुद्ध आत्मा मैं हूँ ।

जो जिसको जानता है वह उससे भिन्न ही रहता है । मैं शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, देह संघात को जानता हूँ इसलिये मैं इनसे भिन्न सिद्ध हुआ । जितने समय आत्म विचार चला उतने समय मैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था से भिन्न तुरीय अवस्था या सविकल्प दशा को प्राप्त हो जाता हूँ । ऐसी दशा दिन में दसबार भी प्राप्त हो जाया करे तो जीव को ब्रह्मानन्द की अनूभूति अवश्य होने लगेगी । जरूर सुख प्राप्ति होगी ।

काम शुरू करने के पहले मैं कौन हूँ ? काम कौन करेगा ? काम करने की प्रेरणा देने वाला कौन है ? और तुम यह सब बातों को जानने, बताने वाले कौन हो ? उत्तर में मालुम पड़ेगा कि मन को इच्छा हो रही है अमुक कार्य करने की, उसकी आज्ञासे प्राण शरीर इन्द्रियाँ मिलकर कार्य करेंगे । काम पूर्ण हुआ देह संघात् द्वारा मन की इच्छा से और अब मन ही उसका फल भोगने वाला है और मैं केवल इस कार्य के प्रारम्भ से कार्य समाप्ति तक एवं उसके फल भोगने का एक मात्र साक्षी हूँ ।

पद्मासन में बैठ जावे । अपना बाँया हाथ सीधा सामने की तरफ लम्बा करे उसके पांच अगुलियों को फैलावें, जो स्थूल शरीर पंच भूत का प्रतीक है । दाँया हाथ भी इसी प्रकार सीधा कर लम्बा कर उसको सूक्ष्म शरीर का प्रतीक जाने । अब अपने को स्थूल व सूक्ष्म शरीर के पीछे द्रष्टा रूप इनसे भिन्न असंग आत्मा जाने । इस प्रकार की भावना कर दोनों हाथ नीचे ला ज्ञान मुद्रा में बैठ जावे । जितना समय बैठ सके एकाग्रता का आनन्द ले ।

ज्ञान मुद्रा में बैठ जावे उस मुद्रा वाले दाँये हाथ को अपने छाती के सम्मुख लावे । फिर उसे ध्यान पूर्वक देखें तो मालुम पड़ेगा प्रथम तीन अगुंलियाँ सीधी खड़ी है चौथी अगुंली अंगुठे से जुड़ी है और मैं इस ज्ञान मुद्रा को देखने वाला उससे पृथक साक्षी मात्र हूँ ।

अब इन पांचो अंगुलियाँ का प्रतीकार्थ समझे । प्रथम छोटी कनिष्ठिका अंगुली सत्व, रज तथा तम गुणों का प्रतीक है । दूसरी अनामिका अंगुली तीन शरीर स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर का प्रतीक है, तीसरी मध्यमा अंगुली जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था का प्रतीक है । चौथी तर्जनी अंगुली जीव का प्रतीक है तथा पांचवाँ अंगुठा ब्रह्म का प्रतीक है ।

जब यह जीव रूप चौथी तर्जनी अंगुली सीधी खड़ी तीन अंगुलियों से मिल जाती है अर्थात् तीन अवस्था, तीन शरीर व तीन गुण रूप देह

संघात् में अहं बुद्धि कर लेती है तब इस जीव को देहाध्यास के कारण संसार गमना गमन होता है ।

जब यह जीव किसी सद्गुरु की कृपासे अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है तब देहाध्यास का त्याग कर उन तीन अंगुलियों से हट तर्जनी अंगुली अंगुठे के साथ एकत्व करलेता है। तब इसे ८४ लाख योनियों में भ्रमण नहीं करना पड़ता है । तब यह जीव जीवन्मुक्त हो ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है ।प्रायः ज्ञानी लोग इसी ज्ञान मुद्रा में बैठते हैं, जिसमे प्रथम तीन अंगुलियों सीधी व चौथी अंगुली अंगुठे के साथ जुड़ी रहती है । ज्ञानी महाजन अपने अधिकारी शिष्यों को मौन रूप में इस मुद्रा के द्वारा यही ज्ञानोपदेश करते हैं कि जब तुम तीन गुण, तीन शरीर, तीन अवस्था के अहंकार से रहित ब्रह्म में सोऽहम् भावना करो तो मुक्त हो सकोगे। जब जीव ब्रह्म भाव, सोऽहम् भाव छोड़ देह, गुण, अवस्था में अभिमान करता है, तो यह बन्धन को प्राप्त करता है ।

बिस्तर से उठते ही अपने से पूछो कि कौन उठा ? उत्तर मिलेगा मन उठा । फिर शरीर और इन्द्रियों को काम में लगाया जाता है । फिर अपना विचार करो कि मैं इस शरीर और मन को जानने वाला नित्य आत्मा हूँ । इस निष्ठा को, इस धारणा को, इस विचार को निरन्तर ध्यान रखना ही ब्राह्मी स्थिति या जीवन्मुक्ति है ।यही मनन, निदिध्यासन है, यही आत्म साक्षात्कार है । इस विचार वाले को सदा आनन्द बना रहता है, उसके देहाभिमान का नशा उतर जाता है ।मन को शान्त रखने के लिये मैं द्रष्टा आत्मा हूँ ऐसा अनुभव करते रहना चाहिये ।हर घंटे के बाद पांच मिनिट मैं कौन हूँ ? विचार कर लेना चाहिये । फिर भी मन तरंगित हो तो होने दे । मैं तो मन का द्रष्टा मनसे भिन्न हूँ । जैसे तरंगे सागर से पृथक् नहीं है इसी प्रकार मुझ आत्मा की मन तरंग मुझसे पृथक् नहीं है ।अपने अखण्ड भाव में किसी को अपने से अन्य सत्तावान् मान अपने को खण्डित न करे ।

मन को समझावें कि अखिल ब्रह्माण्ड में परमात्मा के सिवाह अन्य कोई है ही नहीं । इसलिये कुछ अन्य हुआ ही नहीं । अथवा ज्ञान दृष्टि से मैं एक ही हूँ । देह अभिमान हो जावे तो उसे भूलाकर ऐसा मानना की आत्मा एक ही है ।

साधना का प्रारम्भ श्रद्धा से होता है परन्तु साधना का अन्त ज्ञान से होता है । ज्ञान का मतलब सभी जीव को ब्रह्म स्वरूप देखना ।

ध्यान छूटने पर पुनः संसार के विचार आते हैं । मन द्वैत में दौड़ने लगता है और फिर विक्षेप का अनुभव होता है । इसलिये ध्यान से आगे बढ़ना चाहिये । ध्यान से आकर ज्ञान पर यात्रा पूरी होती है । अतः ध्यान के साथ ज्ञान जरूरी है ।

प्रायः ध्यान द्वारा एकदेशीय पना साधक में आजाता है । इसके द्वारा सुखानुभूति तो अवश्य होती है, यह मन की दशा अच्छी है । पर इससे भी आगे बढ़ना है, जहाँ सर्वात्मभाव जाग्रत होता है । अन्त में अहं तथा इदं छोड़ कर इस द्वैत से ऊपर उठ अद्वैत में अर्थात् एक ब्रह्म ही है इस अनुभव में उतर कर बैठना है ।

हठ योग एवं ध्यान द्वारा किसी को अद्‌भुत चित्र, दृश्य रूपादि दिखाई पड़ते है, किसी को नाना राग रागनियाँ संगीत वाद्ययन्त्र की ध्वनी सुनाई पड़ते है । किसी को दूर दर्शिता प्राप्त हो जाती है, किसी को छिपा धन दिखाई पड़ता है । भविष्य में होने वाली घटना का अभी पता लग जाता है, किसी को लाटरी सट्टे का नम्बर मालुम पड़ जाता है, किसी को वचन सिद्धि हो जाती है, किसी को रोग दूर करने की स्पर्श शक्ति प्राप्त हो जाती है । परन्तु इसमें से एक भी लक्षण आत्म प्राप्ति का नहीं है । आत्म ज्ञान व्यवहारिक जीवन में लाभ–हानि में कार्य की सफलता विफलता में भविष्य की बात बताने के लिये नहीं है । यदि यह सब कोई करता है, जानता है तो वह तत्वज्ञ नहीं है ।

अजातवाद

जैसे स्वप्न द्रष्टा पुरुष ही समस्त स्वप्न चराचर प्रपंच रूप होकर दिखाई पड़ता है। उसी तरह जाग्रत द्रष्टा जीव ही जगत् प्रपंच रूप होकर दिखाई पड़ता है । वास्तव में कुछ नूतन उत्पन्न ही नहीं हुआ, यह अजात वाद वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है ।

जैसे मन्द अन्धकार दोष के कारण सीप चान्दि की तरह प्रतीत होती है लेकिन सीप का यथार्थ ज्ञान हो जाने से रूपा का भ्रम दूर हो जाता है । इसी तरह ज्ञान से संसार सत रूप मालुम पड़ता है एवं सत्य विचार से कल्पित जगत् भ्रम की निवृत्ति हो जाती है ।

आत्मज्ञान होने पर सब दृश्य ब्रह्म रूप दिखाई पड़ते हैं । ब्रह्म दृष्टि उत्पन्न होना ही सच्चा ध्यान है और वही सच्चा ज्ञान है । सूर्य, चन्द्र, विद्युत, तारागण, नक्षत्र सभी मुझे प्रसन्न करने के लिये अपना अपना नृत्य करते है । सभी नाम, रूप मेरे खिलौने हैं ।

बहुत से लोग इस वेदान्त को सुनते है किन्तु वे इसका अनुभव नहीं करते । सर्वत्र ब्रह्म का अनुभव नहीं करते इसलिये उन्हें आनन्दानुभूति नहीं होती । जैसे मनुष्य अन्न,जल और पवन के बिना नहीं चल सकता इसी प्रकार ब्रह्म चिन्तन बिना नहीं रह पाना चाहिये । आत्मज्ञान के सिवाय शान्ति पाने का कोई अन्य स्वतन्त्र मार्ग नहीं है । इसके लिये अनुभवी आत्मवित सन्तों के ही शास्त्र का स्वाध्याय करे, अन्य ग्रन्थों को न पढ़े । न नाना शास्त्र पढ़े न हर एक महात्मा के पास दौड़े । हर महात्मा की बात सुनने से अनेक नूतन शंका जाग्रत हो जाती है । वास्तविक सुख आत्मस्थ होने में है । देहस्थ तथा मनस्थ होना तो एक मात्र दुःख का ही मूल कारण है ।

''मैं कौन हूँ'' इसकी बारम्बार खोज करते चलो । ऐसा खोजते खोजते अनात्मा से, दृश्य से, मेरे रूप में सम्बन्धो से मन हटते हटते आत्मा में स्थिर हो जावेगा । जाग्रत में मैं का अर्थ शरीर और मन होता है । स्वप्न में 'हूँ' याने मैं का अर्थ मन माना जाता है । निद्रा सुषुप्ति में मैं का अर्थ न शरीर, न प्राण, न इन्द्रिय, न मन वहाँ सब खो जाते हैं । इसलिये जो सदा नहीं रहता जो आकर चला जाता है या जाकर पुनः आजाता है वह अनित्य परिच्छिन्न देह संघात, तीन अवस्था, पंचकोष, तीन गुण, तीन शरीर, पंच भूत मैं नहीं हूँ । मैं अनादि अनन्त अजन्मा अविनाशी शुद्ध चैतन्य आत्म ब्रह्म हूँ ।

परमात्मा अखण्ड अविनाशी है इसलिये उससे उत्पन्न जगत् भी अविनाशी है। परमात्मा से उत्पन्न हुए जगत् में परमात्मा के अनन्त अविनाशी गुण दिखते है। जैसे चीनी से बने हाथी, घोड़ा के पैर,पूछ,कान कहीं भी तोड कर खाओ,दुध में ड़ालो मीठा ही लगता है क्योंकि वास्तविकता में वह हाथी,घोड़ा के शरीर अवयव केवल चीनी ही है।

हम लोग एक वृक्ष को खड़ा देखते है किन्तु वह इतना ही नहीं वह पृथ्वी से जुड़ा है, वृक्ष पृथ्वी का हिस्सा है, पृथ्वी जल से जुड़ी है । जल विना वृक्ष का जीवन नहीं, जल तेज से जुड़ा है । तेज वायु से जुड़ा है । वायु विना वृक्ष का जीवन नहीं, सूर्योदय न हो तो वृक्ष मर जायेगा इसलिये पृथ्वी, जल, सूर्य, वायु, वृक्ष का हिस्सा है । वृक्ष का फैलाव आकश बिना नहीं, इसलिये वृक्ष में आकाश भी जड़ा है, आकाश भी वृक्ष का हिस्सा है । इस वृक्ष की पैदाइस जिस बीज से हुई वह किसी वृक्ष का हिस्सा था वह दूसरा वृक्ष उससे पहले वाला वृक्ष का हिस्सा है । इस प्रकार पहले पहले की खोज करते चले जावेगें तो अनन्त आकाश इस वृक्ष का हिस्सा हो जावेगा । इसीतरह इस सृष्टि के एक छोटे से छोटे प्राणी का भी पूर्व का इतिहास खोजेगें तो उससे समग्र विराट ब्रह्म ही अजात दिखाई देगा ।

■■■

दर्द दूर कैसे करें ?

जब सिर में दर्द हो तो उसे दूर करने हेतु अपने से पूछे कि क्या तू सिर है या सिर का द्रष्टा ? उत्तर मिलेगा मैं सिर दर्द का द्रष्टा हूँ । तब तुझे सिर ही नहीं तो दर्द भी तेरा नहीं । फिर तू क्यों यहाँ दूसरे की बात कर शोर मचा रहा है । दूसरे की बात मत करो अपनी सुनाओ तुम कैसे हो ? तो उत्तर मिलेगा मैं निर्विकार, निराकार, निरामय, निरन्जन, निष्क्रिय आत्मा हूँ ।

जब पैर दुःखे तो अपने से पूछे कि क्या पैर तेरे है ? क्या तू पैर है ? तब उत्तर मिलेगा नहीं । मैं पैर नहीं पैर मेरे नहीं । जब तू पैर नहीं, पैर तेरे नहीं तब क्यों दूसरे की बात करता है रे पगले ! तू अपना स्वरूप संभाल । जब ज्वर मालुम पड़े तो पूछना कि ज्वर ने तुझे पकड़ा है या ज्वर को तूने पकड़ा ? ज्वर तो जड़ है वह तुझ चैतन्य को कैसे पकड़ सकता है, चैतन्य ही जड़ को पकड़ सकता है । तू न पकड़े तो ज्वर तुझे कैसे स्पर्श कर सकेगा ?

जब शरीर के रोग के साथ मन जुड़ जाता है तब वह रोग बहुत कष्ट दायक लगता है और जब मन उस दर्द के साथ नहीं तो दर्द आकर चला गया पता भी नहीं चलता है । उस वक्त विचार करना चाहिये कि मैं निरामय पूर्ण स्वस्थ हूँ । मुझे शरीर नहीं, मन नहीं तो रोग कैसे हो सकते हैं ? ऐसी मनोदशा को मजबूत करना चाहिये । शरीर है वहाँ तक तो रोग–भोग, शोक–मोह, राग–द्वेष, काम–क्रोध आते ही रहेंगे किन्तु अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन करते रहेंगे तो 100% रोग 10% होकर चले जावेंगे ।

जिसके अनेक जन्मों के पुण्य जाग्रत होते हैं तभी उन्हें ऐसे सच्चे सद्गुरु मिलते हैं । वे तुम्हें तुम्हारे स्वप्न से जाग्रत कर सकेंगे । गुरु मार्ग दर्शक है उसके अनुसार तुम्हें अपनी निष्ठा को दृढ़ करना है, यह काम तुम्हारा है ।

ज्ञानी प्रपंच में भी ब्रह्म ज्ञान के द्वारा सुखी रहता है । अज्ञानी ब्रह्म में भी विकार प्रपंच देखता है । परमात्मा के सिवाय अन्य देवी–देवता की सत्ता को मानने से अखण्ड ब्रह्म सत्ता का दृढ़ बोध नहीं हो पाता है । अज्ञान जनक प्रवृत्ति आत्म स्मृति को भुला देती है ।

रस्सी में मन्द अन्धकार के कारण सर्प भ्रान्ति होती है और वह सर्प बहुत पुराना दस वर्ष पुराना–सा लगता है, किन्तु वहाँ सर्प ही नहीं है जब दृष्टि रस्सी पर गई तभी वह उसके संकल्पानुसार सर्प उत्पन्न हुआ आगे पीछे नहीं । जब रस्सी का यथार्थ बोध हो जाता है तब भी वहाँ सर्प नहीं । अधिष्ठान रस्सी के अज्ञान से सर्प अध्यस्थ भासमान होता है एवं अधिष्ठान रस्सी के ज्ञान से अध्यस्त सर्प भ्रान्ति दूर हो जाती है इस तरह दृष्टि गई तभी सर्प सृष्टि हुई ।

इसी तरह आत्म अज्ञान से ब्रह्म में सृष्टि दिखाई पड़ती है और यह संसार बहुत हजार वर्षों पुराना लगता है जैसे स्वप्न संसार बहुत पुराना सा लगता है जबकि वह निद्रा काल में ही कुछ मिनिट में उत्पन्न होता है ।

वास्तव में जब दृष्टि तभी सृष्टि दिखाई देती है । दृष्टि पड़ने के थोड़ा पहले या बाद में दिखाई नहीं देती है ।

तात्पर्य यह है की संसार तीन काल में नहीं है। निद्रा दोष से जैसे स्वप्न संसार दिखाइ पड़ता है इसी प्रकार अज्ञान दोष से जाग्रत संसार दिखाई पड़ता है। जैसे नींद टूटने पर स्वप्न संसार मिट जाता है,इसी तरह अज्ञान नष्ट हो जाने से जाग्रत जगत भी स्वप्न समान मिथ्या हो जाता है।

■■■

आत्म बोध

परमात्मा सर्वव्यापक होने से मेरे से कभी दूर पृथक नहीं हो सकते । परमात्मा आनन्द स्वरूप है, उसे '**रसो वै सः**' कहते हैं । आनन्द किसी बाहरी पदार्थ से मिलने वाली वस्तु नहीं है। वह तो मन शान्त होने से उसमें आत्मानन्द प्रतिविम्बित हो जाता है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने गहरी नींद में बिना विषय के आनन्दानुभूति होती है । मन के चंचल हो जाने से वह प्राप्त प्रकट आनन्द पुनः लुप्त हो जाता है । जैसे स्थिर जल पात्र को हिलादेने से प्रतिबिम्ब बिखर जाता है पर आकाश स्थित सूर्य चन्द्र वैसे ही स्थिर बने रहते है ।

परमात्मा सर्व व्यापक होने से सबका अपना ही स्वरूप है अर्थात् सब ब्रह्म स्वरूप ही है किन्तु अज्ञान से प्राप्त परमात्मा भी अप्राप्त जैसा लगता है । ज्ञान होने से वह प्राप्त परमात्मा ही प्राप्त हुआ जैसा लगता है लेकिन कोई नूतन रूप से प्राप्ति नहीं होती है । परमात्मा सब जीवों का अपना नित्य स्वभाव ही है । नित्य प्राप्त ही है ।

आप जिसे साधनों द्वारा कष्ट उठाकर खोज रहे हो वह 'दसवाँ तू ' द्रष्टान्त की तरह तुम स्वयं ही हो । आप व परमात्मा अलग नहीं है इसी प्रकार मैं व तू भी अलग नहीं है, एक ही है, देह उपाधि से दो भासमान होते हैं । बल्बों के रंग,वाटस् भिन्न-भिन्न है किन्तु सब को चलाने वाली बिजली शक्ति एक व सब में अभिन्न ही है । तुम सच्चिदानन्द स्वरूप ही हो ।

तुम स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण देह नहीं हो । प्रत्युत इन चारो देहों का जानने वाले, प्रकाशित करने वाले तुम असंग आत्मा हो । सूर्य,चन्द्र, तारे, नक्षत्र तथा समस्त नाम रूप जगत् को प्रकाशित करने वाले स्वयं प्रकाश ब्रह्म तुम ही हो । परन्तु जीव अपने उस सत्य स्वरूप के अज्ञान से ही स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि शरीर को ही अपना स्वरूप मान कर दुःख भोग रहा है ।

जिसको तुम खोज रहे हो, वह तुम स्वयं ही हो । जो कुछ यह दृश्यादृश्य है वह भी तुम्हारा ही स्वरूप है, तुमसे भिन्न अन्य कुछ नहीं है । तुम ही वह परमात्मा हो । तुम नित्य मुक्त हो, किन्तु अज्ञानता से बद्ध मान लिया है एवं दुःख का अनुभव कर रहे हो । जबकि आप कल्याण स्वरूप ही हो । तुम्हारा मोक्ष तो सदा से हुआ ही पड़ा है । अस्तु ! मुक्ति के लिये चिन्ता करना वृथा है । जो कुछ है तुम ही सर्वस्व हो, तुमही हो तुम्हारी महिमा अपार और अगाध है । उसका वर्णन वाणी द्वारा सहस्त्र मुख वाला ब्रह्मा भी नहीं कर सकता ।

सोऽहम् अजपा, अनाहत नाद सभी जीवों में निरन्तर जन्म से मृत्यु तक चलता ही रहता है । सोऽहम् का अर्थ है वह परमात्मा मैं हूँ ऐसी भावना करने के बाद, ''मैं ही तू है'' और ''तू ही मैं हूँ '' तो फिर अन्य कौन बाकी रहा जिसका शोक, मोह, भय किया जावे ? साक्षी होकर प्रारब्ध से होने वाली सभी क्रियाओं को देखते रहो और अपने सोऽहम् मनोवृत्ति में आरूढ़ रहें । अन्य जो कुछ भी पदार्थ है वह तुम ही हो । अन्य कोई है ही नहीं, सब तुम्हारा ही विलास विलस रहा है । जिसे तुम अन्य वस्तु मान रहे हो वह वस्तु तुम स्वयं ही हो ।

अनन्त सुख तो स्वरूप में सोऽहम् वृत्ति आरूढ़ करने से ही होता है और वह तुम्हारे ही अन्दर है । मिथ्या चिन्ता क्यों करते हो ? चित्त जहाँ तक है वहाँ तक जगत् है, सुषुप्ति में चित्त नहीं क्योंकि वह लीन हो जाता है, इसलिये जगत् भी नहीं रहता । एक परमात्मा ही सत्य है, वही तुम्हारा सच्चा स्वरूप है ।

जड़ एवं चेतन यह दो पदार्थ नहीं है । केवल साधक को एक सत्य का बोध कराने के लिये जड़–चेतन इस प्रकार भेद ज्ञान कराया जाता है । सामान्य चेतन को जड़ एवं विशेष चेतन को चेतन कहते हैं । वैसे जड़ व चेतन दोनों सामान्य चेतन से भरे हुए हैं । अन्तःकरण तथा प्राण वायु द्वारा हिलते उठते–चलते हुए को चैतन्य कहते हैं । प्राण वायु व अन्तःकरण का अभाव होने से चैतन्य प्रकट दिखाई नहीं देता है। अत: त्रण से ब्रह्मादिक तक सामान्य चैतन्य में कोई भेद नहीं है।

शरीर से लेकर अन्तःकरण तक कोई पदार्थ मैं नहीं और मेरे नहीं । ऐसा विवेक पूर्वक निश्चय हृदय में दृढ होता है तब मैं आत्मा ही परमात्मा हूँ इस कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मैं और मेरा है। तब एक शरीर से मैं–मेरा देहाध्यास सरलता से दूर हो जाता है ।

जब दुःख लगता है उस समय मन रूपी घड़ा चैतन्य रूपी जल से अवश्य बाहर निकला हुआ जानना चाहिये, क्योंकि अपने सच्चिदानन्द स्वरूप से अपने आपको भिन्न मानते हैं तभी अपने को दुःख लगता है। इसलिये जब–जब दुःख होता है तब मन रूपी घड़े को परमात्मा रूपी सागर में डुबा दो परिणाम में दुःख का नाश हो जाता है ।

भाप, बर्फ, जल इन तीनों का जिस प्रकार सम्बन्ध है इसी तरह आत्मा, मन तथा शरीर का सम्बन्ध है । भाप आत्मा है, जल मन है तथा शरीर बर्फ है । जल व बर्फ का नाश होता है किन्तु तात्त्विक दृष्टि का नाश नहीं होता है । पानी को गरमी लगाओ भाप हो जाती है पानी को ठन्डक लगाओ बर्फ हो जाता है इसी तरह परमात्मा चिन्तन काल में मन परमात्मा हो जाता है एवं देह का चिन्तन करने से मन देहाकार हो जाता है । जल की तरह मन मध्यभाग है ।

■■■

बन्ध व मोक्ष का कारण मन

संसार का प्रत्येक प्राणी अखण्ड शान्ति पाना चाहता है, दुःख किसी को इष्ट नहीं है । मनुष्य जीवन ही एकमात्र जीवन है जिसमें अखण्ड शान्ति प्राप्त करने का द्वार खुलता है । अखण्ड शान्ति प्राप्त करलेना ही मनुष्य जीवन की सफलता है । इसके लिये ही राजा, महाराजा योगी, यति,संन्यासी गृह संसार का त्याग कर वनवासी होते है, नाना प्रकार के कष्ट उठाते हैं किन्तु बिना आत्मज्ञान प्राप्त किये कहीं शान्ति नहीं है ।

यहां संसार में रहते शान्ति प्राप्त करने की कुछ युक्तियाँ बताई जा रही है, जिसके श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा मनुष्य सरलता से शान्ति प्राप्त कर सकता है ।

प्रात: जब व्यक्ति गहरी नींद से उठता है तब कहता है मैं रात सुख शान्ति से सोया, मुझे कुछ भी पता नहीं चला, कुछ भी कष्ट नहीं था । आखिर वहाँ क्या था जहाँ भूल से पहुँचने पर भी दुःख का, कष्ट का, चिन्ता का, भय का,वासना,कामना का नाश हो जाता है ?

सब कहते हैं परमात्मा सर्वत्र है तो तू अपने से पूछ कि तू कहाँ था ? उत्तर मिलेगा मैं भी परमात्मा में ही था । जिस समय मैं भाव नहीं था उस समय परमात्मा तो अवश्य ही था, उसी में से मैं भाव उठा जैसे जलसे ही लहरे उठती है। मैंने उठकर अपने को परमात्मा से पृथक् देह में स्थित जीव मान लिया कि वह और है, मैं और हूँ । इसी कारण जीव अनेक प्रकार कष्ट भोगता है । फिर जब रात्रि यह जीव भाव ब्रह्म में लीन

हो जाता है फिर वही शान्ति, वही आनन्द की अनुभूति होती है । इससे यह अनुभव सिद्ध प्रमाण मिलता है कि परमात्मा के साथ एकत्व का होना ही शान्ति का साधन है एवं उससे अपने को पृथक मानना ही दुःख अशान्ति, भय, चिन्ता का कारण है । अतः हम ब्रह्म से पृथकता का विचार न करे तो जाग्रत अवस्था में भी वही शान्ति है ।

परमात्मा तो व्यापक है एवं हम तो अपने को एक शरीर,एक स्थान,एक रूप में स्थित परिच्छिन्न जीव ही मानते है, तब व्यापक परमात्मा से परिच्छिन्न, एकदेशीय जीव अलग कैसे हो सकता है ? बड़ी चीज में छोटी चीज समा सकती है । गांव से घर पृथक् नहीं, जंगल से वृक्ष पृथक नहीं, बगीचे से पौधा अलग नहीं, पवन से व्यक्ति के प्राण अलग नहीं इसी प्रकार व्यापक परमात्मा से व्यष्टि जीव अलग कैसे व कहाँ रह सकेगा ? कभी नहीं, कहीं नहीं । परीधी से केन्द्र बिन्दु अलग नहीं हो सकता । परमात्मा को परीधी रूप जाने तो जीव को बिन्दु रूप मानले तो कोई भी स्थावर, जंगम, जड़–चेतन, मनुष्य, पशु, पक्षी परमात्मा के क्षेत्र से बाहर नहीं हो सकते क्योंकि परमात्मा आकाश मण्डल की तरह सर्वत्र विद्यमान है । मकान मिट्टी से बन पुराने जीर्ण–शीर्ण हो पुनः उसी मिट्टी में मिल जाते हैं । इसी तरह शरीर पंचभूत से बनते हैं, प्रारब्ध पूर्ण होने पर शरीर पुनः पंच भूत रूप में बिखर जाता है और समष्टि जीवों का प्रारब्ध समाप्त होने पर सृष्टि का नाश हो जाता है ।

परमात्मा पुनः जीव को संचित् कर्मों को भुगवाने हेतु, फिर सृष्टि की रचना करने हेतु संकल्प करता है '**एकोऽहम् बहु स्याम्**' मैं अब पुनः एक से अनेक हो जाता हूँ । परमात्मा के विचार करने से यह सृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिये मैं भी उन्हीं से उत्पन्न हुआ हूँ । यदि यह निश्चय हो जाय कि वही मैं हूँ उन्हीं से उत्पन्न होकर, उन्हीं की सत्ता से जीवित रह कर फिर उन्हीं में लय को प्राप्त हो जाता हूँ तो मैं उनसे किञ्चित् एवं क्षण भर भी पृथक् नहीं, तो फिर याद भी किसकी करूँ भजन भी किसका करूँ बल्कि याद करना उल्टा उनसे अपने को पृथक मानना ही हुआ ।

क्योंकि ध्यान, चिन्तन, सुमिरन, याद, जप, भजन अन्य के प्रति ही किया जा सकता है, जिसे हम अपने से श्रेष्ठ व अपने को गौण, अधम, नीच माने । ऐसा करना तो परमात्मा का ही अपमान करना, परमात्मा को ही अधम, नीच, पापी, दुष्ट, चाण्डाल मानना हुआ । क्योंकि वही तो एकसे अनेक रूप हुआ बैठा है ।

यदि परमात्मा को अपने हृदय में भी मानले कि उसकी सत्ता के बिना इस शरीर में एक श्वाँस भी भीतर बाहर नहीं हो सकता तो फिर पुकारना, बुलाना तो उसे पड़ता है जो हमसे दूर है। जैसे पानी में डूबने वाला, अग्नि में जलने वाला चिल्लाता है कि दौडो, बचाओ मैं डूबा जा रहा हूँ, भक्तों ने इसी प्रकार के मूर्खता पूर्ण भजन भी बना रखे हैं ।

नाथ दौड़ो अब बचाओ, नाव डूबी जा रही
हूँ अधम,आधीन,अशरण अब शरण में लीजिये

अथवा जो हमारे पास बैठा या सम्मुख खड़ा व्यक्ति हो तो उसे हम जोर से चित्कार करके आवाज नहीं देते हैं । यदि जोर से चिल्ला कर बुलाते हैं तो वह कहेगा क्यों रे क्या तू अन्धा है या मैं क्या बेहरा हूँ जो इतने जोर से चिल्ला कर मुझे पुकार रहा है, मैं तो तेरे हाथ से हाथ मिलाकर बैठा हूँ । इसी तरह परमात्मा व मैं एक ही हृदय स्थान में साथ बैठे हैं । ऐसा मानले तो भी कुछ करने की, कहीं जाने की आवश्यकता नहीं अथवा वह परमात्मा 'मैं' ही व्यष्टि रूप से जीव संज्ञा व समष्टि रूप से ईश्वर संज्ञा को प्राप्त हुआ हूँ । जैसे व्यष्टि रूप से जो पौधा है, वृक्ष है, मकान है, प्राण है, जीव है समष्टि रूप से वही तो बगीचा, जंगल, गाँव, पवन तथा परमात्मा संज्ञा को प्राप्त हुआ है । इस प्रकार मैं व परमात्मा दो नहीं एक ही है । ऐसा दृढ़ निश्चय करके विस्मृति को स्मृति में बदल दें । प्रत्येक घंटे में एक मिनट मन को काम से हटाकर यही निश्चय करावें कि मैं परमात्मा से भिन्न नहीं हूँ । 'सोऽहम्' वह मैं हूँ इस तरह बारम्बार विचार से ब्रह्म निष्ठा दृढ़ हो जावेगी ।

जीवन के अन्तिम समय में जब बिस्तर से उठा बैठा नहीं जा सकेगा, शरीर शिथिल हो जावेगा नेत्र, श्रोत, इन्द्रियाँ काम नहीं करेंगी उस समय पूजा, पाठ, मंत्र, माला, तीर्थ, मन्दिर सब छूट जावेंगे तब यह आत्म निष्ठा, ब्रह्म निष्ठा का साधन वहाँ पहुँचादेगी जहाँ कर्मी, भक्त, योगी, ध्यानी साधन कर भी नहीं पहुँच पाते हैं । फिर यह आत्मनिष्ठ देह त्यागते ही परमात्मा रूप में ही रह जाता है । जैसे मकान की दिवारे, छत गिरते ही वहाँ का आकाश जिसे मठाकाश कहा जाता था, वह महाकाश रूप ही रह जाता है, होना या बनना नहीं पड़ता । इसी प्रकार देह नाश से जीव ब्रह्म रूप ही रह जाता है । इस प्रकार यह अभ्यासी 'सोऽहम्' निष्ठा द्वारा संसार सागर से बिना कष्ट ही पार उतर जाता है । जन्म मरण के फन्दे से छूट जाता है। अतः निश्चय करें कि आज से चौबिस घन्टे में एक घन्टा तो अवश्य इस सोऽहम् चिन्तन में लगाउँगा ।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ विधिनाना ।।

आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी ।।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
गृहइ घ्राण बिनु बास अषेशा ।।

प्रत्येक मनुष्य का निद्रा के समय शरीर जड़वत् सोया पड़ा रहता है, आँख, कान, मुंह बंद रहते हैं, हाथ पैर सिर अचल पड़े रहते हैं तब भी यह जीव बिना इन स्थूल इन्द्रियों के वे सभी काम भोग स्वप्नकाल में करता दिखाई पड़ता है जिनके सहयोग से यह जाग्रत में सब काम करता था बल्कि जो काम जाग्रत में नहीं हो पाते हैं वह काम, वह भोग भी स्वप्न में करलेता है । अतः तू निश्चय कर कि मैं यह स्थूल देह नहीं हूँ ।

जीव को गहरी नींद के समय दिव्य सुख का अनुभव होता है, जो जाग्रत अवस्था में विषय वस्तु से भी प्राप्त नहीं होता है । इससे सिद्ध

होता है कि वहाँ संसार का अभाव होने पर भी मैं तो रहता ही हूँ एवं आनन्द का भी अनुभव करता हूँ । नींद की यही अवस्था मृत्यु के समय भी होती है । तब वहाँ भी किसी प्रकार का भय नहीं रहता है, वहाँ भी दिव्य सुखानुभूति होती है । हे आत्मन् ! मैं मर जाऊँगा ऐसा मन में भय मतकर, सत्य तो यह है कि तेरी मृत्यु कभी होती ही नहीं क्योंकि जीव नित्य तत्त्व है । '**जीव नित्य तुम किसलिये रोवत**' । हे जीव । तू अमर आत्मा है । वास्तविकता तो यह है कि तू देह का त्याग कर, दुःख के केन्द्र से बाहर हो जा । तुझे कहीं जाना नहीं कि कहीं से आना नहीं। लहर जल से उठी जल में ही समा जाती है, न कहीं से आती है और न कहीं जाती है ।

हे जीव ! तू शरीर में आकर अपने आत्म स्वरूप को भूल इस मृत स्वभावी शरीर में मैं भाव कर बैठा इसी कारण दुःखी होता है । शरीर को मैं मान शरीर के सम्बन्धी लोगों को मेरा मान बैठा । तू तो इस देह संघात् का साक्षी है । तेरी सत्ता पाकर ही यह निर्जीव शरीर सजीवसा होता दिखाई पड़ता है । तू ही इसे चला रहा है, तेरी सत्ता के बिना एक श्वाँस भी भीतर बाहर नहीं हो सकता । तुझसे ही उत्पन्न होकर नींद के समय तुझ मे ही सब लीन हो जाता है । तू इस जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों अवस्था से भिन्न तीनों का आधार, अधिष्ठान, जानने वाला साक्षी आत्मा, स्वयं प्रकाश, अखण्ड, आनन्द, निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय, निरन्जन, निर्भय, अजर, अमर, सच्चिदानन्द सर्वग्य, सर्वशक्तिमान, एकरस, रसघन, आनन्द घन नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त है । तू मन एवं मन रचित इस स्वप्नवत मिथ्या संसार से भिन्न है ।

जब तक जीव को मैं ब्रह्म हूँ, मैं साक्षी हूँ, मैं आत्मा हूँ इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं होता है तब तक यह जीव जन्म–मरण के पाश में बन्धा दुःख पाता रहता है । अनेक जन्मों के बाद पुनः ईश्वर कृपा से किसी वैराग्यवान ज्ञानीकूल में या श्रीमंत धार्मिक परीवार में जन्म लेता है तब ईश्वर की निष्काम कर्म एवं उपासना द्वारा ब्रह्म जिज्ञासा उदय होने पर

किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की प्राप्ति होती है तभी यह जीव अपने सच्चे आत्म स्वरूप को पहचान लेता है । विचार करना है कि जब परमात्मा सर्व व्यापक है, सर्व स्थलों में है, सर्व रूपों में है, सब काल में है, तो फिर मैं उससे पृथक् कहाँ हूँ ? मैं वही हूँ । तो फिर किसकी कामना करूँ ? किसका भय करूँ ? इस विचार से एक त्रण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी को निजात्म रूप में अनुभव कर लेता है और जीवन्मुक्त हो शेष जीवन परमानन्द रूप से व्यतीत करता है ।

जैसे समुद्र में लहरे उठती है, बैठती है उन सभी छोटी बड़ी लहरों का वास्तविक स्वरूप जल ही है, लहरे तो देखने मात्र की है । जैसे स्वर्ण ही अलंकार नाम से जाना जाता है, स्वर्ण से भिन्न अलंकार कुछ नहीं, इसी प्रकार यहाँ एक ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं । इस परमात्मा में ही मैं, तू, यह, वह सहित सम्पूर्ण जगत् मिथ्या भास रहा है जैसे आकाश में इन्द्र धनुष, गन्धर्व नगर और मरूस्थल में जलाशय ।

हे आत्मन् ! सावधान मन से श्रवण कर यह संसार मनोमात्र है । जैसे किसी का पुत्र परदेश में गया हो एवं कोई उसे झूठी मृत्यु की खबर दे देवे, तो वह रोने लगता है जबकि ईश्वर रचित पुत्र जीवित है । अथवा जिसका पुत्र मर गया व कोई झूठी खबर करदे कि तुम्हारा पुत्र बहुत बड़ा धनाढ्य व्यक्ति हो गया है एवं चुनाव में जीत कर अब वह इस राज्य का मंत्रि महोदय बन चुका है, तो वे उस मृत पुत्र के पिता माता मनमें हर्षित होते रहते हैं, जबकि ईश्वर रचित पुत्र मर चुका है । इस प्रकार झुठी मोह–ममता, अपना–पराया, राग–द्वैष कर यह जीव संसार में बारम्बार एक शरीर छोड़ दूसरे शरीर में प्रवेश करता रहता है । इसी बात को किसी सन्त ने कहा है कि विचार करके देख प्यारे ! जगत बना है मन से । अर्थात् यहाँ एक ब्रह्म के अतिरिक्त किञ्चित् भी कुछ अन्य नहीं है । भेदभाव रखना ही जन्म–मृत्यु का कारण है ।

■■■

जीवन मुक्त के लक्षण

दुर्लभ जीवन पाकर भी यदि मनुष्य अपने कल्याण का साधन ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा न करे तो फिर यह कब एवं कहाँ अपना कल्याण कर सकेगा ? जीव, जगत् एवं जगदीश को प्रकाशित करने वाले मायाधीश और सब जीवों के हृदय में साक्षी रूप से विराज मान को जो अनुभव करता है, वह ब्रह्मरूप ही होता है ।'**ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति**' ।

सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्म जो ज्योतियों का ज्योति अन्धकार से परे परमात्मा है उसका आत्मरूप से, साक्षी रूप से, मैं रूप से अनुभव करने वाला जीव संसार में कर्म करते हुए भी बन्धन को प्राप्त नहीं होता है । परन्तु ऐसे सर्वत्र रहने वाले सच्चिदानन्द के विवर्त रूप अस्ति, भाति, प्रिय रूप परमात्मा को कोई ज्ञान चक्षु द्वारा ही अनुभव कर पाता है । अज्ञानी अन्ध पुरुष उस निजात्म स्वरूप परमात्मा को मैं रूप से कभी अनुभव नहीं कर सकेंगे । ब्रह्मज्ञान द्वारा मरण धर्मा अमरता को प्राप्त करलेता है और वह ब्रह्म मैं हूँ इस प्रकार जिसने अमृत आत्मा को जान लिया, उसे फिर किसी का भय नहीं लगता ।

अज्ञानी को जगत् दुःख रूप लगता है, वही जगत् ज्ञानी को आनन्दमय ब्रह्ममय अनुभव में आता है । सर्व व्यापक अनन्त सच्चिदानन्द रूप में स्थिर रहने वाले के लिये किसका ग्रहण किसका त्याग हो सकेगा ? उसे किससे मुक्ति व किससे बन्धन कहें ? जहाँ एक के अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं । हमेशा सर्व प्राणियों में अपना ही चैतन्य साक्षी रूप

जानने वाले को अपना व दूसरे का देह प्रतीत ही नहीं होता । ब्रह्म को देखने वाला सम्पूर्ण जगत् के जीवों को देखते हुए भी अपनी आत्मा से पृथक किसी को नहीं देखता है ।

'ब्रह्म है' ऐसा जानना ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान है । अनुभव किये बिना संत, शास्त्र सुन पढ़ कर निश्चय कर लेना यह ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान है।

'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार जानना ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान है इसे साक्षात अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं । जो वेद के महावाक्यों द्वारा जीव को ब्रह्म रूप निश्चय कराया जाता है, इसे साक्षात अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं ।

'मम' – मेरा तथा 'निर्मम'– मेरा नहीं, इन दो शब्दों में ही जीव का बन्धन एवं मुक्ति होती है । बाहर की तथा अन्दर की समस्त चिन्ताएं छोड़ तुम स्वस्थ होओ । संकल्प को लेकर ही यह जगत् भासमान होता है । इसलिये संकल्प को छोड़कर निर्विकल्प अवस्था का आश्रय लो ।

घटाकाश तथा मठाकाश जैसे महाकाश में रहते हैं इसी तरह जीव तथा ईश्वर मुझ सामान्य चेतन ब्रह्म में ही रहते हैं । अतः जीव व ईश्वर की कल्पना छोड़ कर मात्र ब्रह्म तत्त्व का ही चिन्तन करो । शरीर आज गिरे या सूर्य, चन्द्र रहे उतने दीर्घ लम्बे समय तक बना रहे इससे मुझ आत्मा में कोई अन्तर नहीं पड़ता है ।

कांचली को छोड़ देने वाला सर्प फिर छोड़ी गई कांचली में कोई ममता, आसक्ति अहं नहीं रखता । इसी प्रकार देह भाव को छोड़ने वाले ज्ञानी में देह की मृत्यु होने का भय से किंचित् भी आसक्ति, ममता नहीं रहती । ब्रह्मतत्त्व का भान होते ही जीव पना भी नहीं रहता । इसी तरह अद्वैत का बोध होने पर द्वैत नहीं रहता ।

जैसे पानी में डाली मिश्री पानी के साथ एकरस हो जाती है इसी तरह मन आत्मचिन्तन में एकाग्र होने से स्वयं आत्मा ही हो जाता है, वह दशा समाधि कहलाती है ।

एक अखण्ड, अद्वय आत्मा ही कभी पृथक्–पृथक् होती नहीं इसलिये मैं अखण्ड ही हूँ। क्योंकि मेरे से पृथक् कुछ भी नहीं है। जो कुछ दिखाई पड़ता है अथवा सुनाई पड़ता है वह सब नित्य, शुद्ध, मुक्त आनन्दमय सत्य ज्ञानमय तथा अनन्त परमात्मा ही है और यह परब्रह्म मैं हूँ । बादल जैसे आकाश को स्पर्श नहीं कर सकते, इसी प्रकार आनन्द और ज्ञानरूप मुझ आत्मा को दुःख स्पर्श नहीं कर सकते । परम योगी के लिये जन्म–मरण,मल–निर्मल,आना–जाना,सुख–दुःख सब कुछ होता ही नहीं क्योंकि उसकी दृष्टि में सब एक आत्मा ही हो चुका है ।

समस्त मायामय जगत् मुझ आत्मा में ही कल्पित हुआ है । देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कर्ता–भोक्ता आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी यह कुछ नहीं है केवल एक मात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं ही हूँ ।

धन की इच्छा से धनवान् की जिस आदरभाव से वन्दना, प्रार्थना संसार में की जाती है उतनी श्रद्धा भक्ति से परमात्मा को पाने की इच्छा की जाय तो परमात्मा या मुक्ति सभी को प्राप्त हो सकती है ।

राग–द्वेष उत्पन्न होने लगे उसी समय उन्हें ज्ञानाग्नि में जलाकर भस्म कर देना चाहिये । उसी समय पूछे कि मैं कौन हूँ, कहाँ नहीं, और क्या नहीं ? तो उत्तर मिलेगा मैं आत्मा ही सर्वत्र सर्वरूप हूँ तो उसी क्षण इस विचार अग्नि में अध्यास जनित अहं–मम, राग–द्वेष जल जावेंगे चित्त शुद्ध हो जावेगा । सद्गुरु से प्राप्त ज्ञानाग्नि के अतिरिक्त कोई मन्त्र, तन्त्र, जप, तप, कुण्डलिनी,सिद्धि आदि साधन जीव को बन्धन ही दिलाते है ।

सिद्धियों को देने वाला द्रव्य, मंत्र, औषध, क्रिया आदि साधन परमात्मा की प्राप्ति में किञ्चित् भी उपयोगी नहीं वरन बन्धन एवं पतन रूप है क्योंकि उनकी अखण्ड आत्मबुद्धि नहीं हो सकेगी । जिसके द्वारा सभी इच्छाएँ शान्त हो जावे कोई कामना, भय, चिन्ता न रहे ऐसी आत्मसिद्धि ही महान् सिद्धि है, उसे प्राप्त कर लेना ही जीवन्मुक्ति है, वही महासिद्ध है । वही परम योगी है ।

सुख या दुःख में जिसका मन हर्षित या शोकवान नहीं होता वह जीवन्मुक्त ज्ञानी है । राग–द्वेष, सुख–दुःख, हर्ष–शोक, काम क्रोधादि बाहर से दिखाई पड़ने पर भी भीतर से जो आकाश की तरह निर्विकार, अचल, असंग, निरन्जन रहता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है । क्रिया करता हो अथवा क्रिया न करता हो तो भी जिसके मन में अहंकार उत्पन्न न हो और जिसकी बुद्धि देहाभिमान न करती हो, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ।

लोक जिससे उद्वेग को प्राप्त नहीं होते हैं तथा जो लोकों से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष–शोक, भय से मुक्त है वह जीवन्मुक्त कहलाता है । यह दिखाई पड़ने वाला जगत् मैं ही हूँ, जो दिखता है वह सब रस्सी में सर्प की तरह झूठा है । सर्वाधिष्ठान मैं आत्मा ही एकमात्र सत्य हूँ , ऐसी निष्ठा वाला ज्ञानी ही जीवन्मुक्त है ।

वासना को छोड़ कर मात्र चैतन्य आत्म स्वरूप में जो स्थिर हो जाता है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप ही बन जाता है । वह समस्त वासना से मुक्त ज्ञानी बिना समाधि प्राप्त किये भी जीवन्मुक्त एवं शरीर त्यागने पर विदेह मुक्त ही है ।

जब तक परमतत्त्व का वह मैं हूँ , सोऽहम्, अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, अयमात्मा ब्रह्म इस प्रकार ज्ञान नहीं हुआ, आत्मनिष्ठा देह भाव की तरह दृढ नहीं हुई तब तक गुरु एवं शास्त्र निर्णय अनुसार चलते रहना चाहिये । जब आत्मबोध दृढ़ता को प्राप्त हो जावे तब अच्छे बुरे की वासना का भी त्याग कर देना चाहिये । क्योंकि शुभ तथा अशुभ वासना भी जीव के लिये बन्धन रूप, बेड़ी रूप है । जैसे चोर को स्वर्ण की जंजीर से बांधे या लोह की जंजीर से बांधे बन्धन तो समान ही है, वह चोर तो चोर ही कहलावेगा । इसी प्रकार शुभ वासना स्वर्ण की जन्जीर एवं अशुभ वासना लोह की जन्जीर के समान, दोनों ही बन्धन रूप होने से त्याज्य ही है ।

आत्म भाव में स्थिर रहो

तत्त्वज्ञान होना यही वास्तविक समाधि है । जड़ होकर सुन चुप–चाप बैठे रहना कोई समाधि नहीं है । क्योंकि क्रिया करना अथवा न करना आत्मा में नहीं है । गुरु शास्त्र एवं अपने अनुभव से जानलो कि मैं देह नहीं हूँ, 'मैं ब्रह्म ही हूँ' । ज्ञान होने के बाद भी बाहर से संसार दिखाई पड़ने पर निश्चय से जानलो कि यह भासमान होते हुए भी नहीं है । जैसे सीप में भासमान चान्दि और मरुस्थल में जल भासमान होने पर भी वहाँ रूपा व जल नहीं है । दुनियाँ का अच्छा–बुरा, सुनने व भोगने पर भी वास्तव में हर्ष–शोक नहीं होता, वही शान्त जीवन्मुक्त ज्ञानी है । जो नहीं मिला उसकी इच्छा करता नहीं तथा जो मिला उसे प्रभु प्रसाद समझ शास्त्र विधि अनुसार प्रेम पूर्वक भोगता है वही सच्चा सन्तोषी है ।

जिस वक्त जो मिलगया उस में जो मनुष्य सन्तोष मानता है उसे आनन्द देने वाली जीवन्मुक्त अवस्था स्वतः प्राप्त हो जाती है । उसके लिये विधि–निषेध, कर्तव्य–अकर्तव्य कुछ नहीं रहता है जैसे स्वर्ण से बने अलंकार स्वर्ण से भिन्न नहीं इसी प्रकार यह जगत् परमात्मा से भिन्न नहीं ।

जब द्रष्टा एक वस्तु पर से दृष्टि हटा दूसरी वस्तु पर दृष्टि डालता है तब एक स्थान से हटाने पर व दूसरे स्थान पर न पहुँचने के बीच में जो

खाली स्थान निराकार निर्विकल्पता है, वह ही चिदाकाश कहलाता है । यदि तुम आगे–पीछे के सभी संकल्प छोड़ कर मध्य चिदाकाश में स्थिर हो जाओ तो तुम्हें सच्ची शान्ति स्वतः प्राप्त हो जावेगी । यह तुम्हारा चित्त ही संसार रूप है और इस चित्त के शान्त होने से सुषुप्ति में संसार का अन्त भी आजाता है । अग्नि का स्वभाव जैसे उष्ण है, इसी तरह चंचलता मन का स्वभाव है । मन का शान्त होना ही अमृत आत्मा है, जैसे लेहेरों का शान्त होना ही जल है । पवन के वेग से शान्त जल ही लहर रूप से प्रतीत होता है, इसी तरह आत्मा में प्रारब्ध प्रभाव से स्पन्दन होना ही मन है । जैसे लहर जल से पृथक् कुछ भिन्न नहीं ऐसे आत्मा इस मन का कोई पृथक् सत्ता नहीं ।

तुम अपने आत्मा का स्वयं ही उद्धार कर्ता हो । तुम्हारे अलावा तुम्हारा उद्धार कर्ता कोई नहीं है । जैसे तुम्हारी भूख तुम्हारे अतिरिक्त कौन दूर कर सकेगा ? कोई नहीं । तुम्हें ही मिटाना होगा ।

मैं भाव, तू भाव यहाँ करने का स्थान ही नहीं है । यह समस्त विश्व एक मात्र मैं ही हूँ और परमात्मा भी मैं हूँ, मेरे सिवाय यहाँ कुछ भी नहीं है ऐसा अहंकार मन से रखना परम अहंकार है जो अन्य समस्त अहंकार का नाशक एवं मुक्तिदायक है । 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा जो वास्तविक रूप से जानता है, वही सच्चा ज्ञानी है ।

तुम संसार में जैसे रहते हो वैसे ही रहो, सगे–सम्बन्धियों के साथ भले रहो, शादी, बच्चे मकान, धन्दा, नोकरी, खेती करो, किन्तु हर क्रिया के समय यह विचार दृढ मन में किये रखो कि मैं कर्ता नहीं, मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ ।

तुम्हारे में द्रष्टा माव जाग्रत हो जाने से फिर सुख–दुःख, भोग–विलास वगेरा में समता बुद्धि अपने आप आ जावेगा । अथवा कर्तापन अकर्ता दोनों छोड़ केवल आत्म भाव में ठहर जाओ ।

मैं पृथक् हूँ और यह पृथक् ऐसी द्वैत भ्रान्ति को मनसे निकालकर मैं द्रष्टा साक्षी चैतन्य आत्मा पूर्ण ज्योति रूप शान्त और सर्व संकल्प से रहित नित्य नीर्विकल्प समाधि में स्थित रहता हूँ ।

दसबार भी सारे दिन में यदि जीव इतना विचार करले तो फिर उसकी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं । इस आत्म निष्ठा को दृढ़ करने के लिये गृह. संसार त्याग करना नहीं, जंगल जाना नहीं केवल शरीर, मन और बुद्धि से पृथक केवल साक्षी आत्मा मैं हूँ, इस विचार को ही देहभाव नाम, जाति भाव की तरह हृदय से स्वीकार करलेना है ।

काम में प्रवेश करने के पहले मैं कौन हूँ ? काम किसे करना है ? काम कराने वाला कौन है और मैं कौन हूँ ? उत्तर होगा मन काम कराने वाला है, देह प्राण, इन्द्रिय काम करेंगी, मन भोगने वाला है और मैं इस त्रिपुटी का प्रकाशक हूँ ।

■■■

आत्म साक्षात्कार हेतु विचार

'**कालत्रयेऽपि तिष्ठती ति सत्**' – जो तीन काल में समान रूप से विद्यमान रहे जिसका भूत, वर्तमान तथा भविष्य में न अभाव हो न परिवर्तन हो उसे सत्य कहते हैं।

इस परिभाषा के अनुसार हमें खोजना है कि ऐसा सत्य तत्त्व क्या है ? तो हम सबसे पहले अपने इस शरीर पर ही सत् तत्त्व का परीक्षण करके देखते हैं कि यह हमारा शरीर क्या सत् श्रेणी में खड़ा रह सकता है या नहीं ।

शरीर जन्म के पहले नहीं था, जन्म के साथ ही प्रति श्वाँस बदल रहा है। जीवन में भी बाल्य, किशोर, यूवा, प्रौढ़, वृद्धा अवस्था में रूपान्तर हो जाता है तथा मृत्यु के बाद भी नहीं रहता । इस कारण शरीर को सत नहीं कहा जा सकता ।

अब इन्द्रियों पर विचार करते हैं कि क्या यह सत है ? इन्द्रियाँ भी पटुता–ठीक काम करना, मंदता–ठीक काम न होना, अन्धता–बिलकुल काम न करना, इस प्रकार तीन स्वभाव के साथ नष्ट हो जाती है । अतः इन्द्रियाँ सत्य नहीं है ।

अब मन पर विचार करते हैं, क्या यह सत्य है ? मन भी एक स्वभाव वाला नहीं है, सुषुप्ति में सो जाता है, मुच्र्छित हो जाता है । चंचल, विकारी है इसलिये यह भी सत्य नहीं है ।

बुद्धि भी कभी मन्द, कभी तीव्र, कभी नष्ट स्वभाव वाली है, बुद्धि का निर्णय अनुकूलता–प्रतिकूलता देख बदल जाता है इसलिये यह भी सत नहीं है ।

उपरोक्त शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सभी दृश्य वर्ग देह संघात, तीन अवस्था, तीन शरीर विकारी होने से सत्य नहीं किन्तु इन शरीर, प्राण, दसों इन्द्रियों तथा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अन्तःकरण की इन चारों वृत्तियों को जो एकरस रह कर जानता रहता है, जिसके जानने के स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आता, वह साक्षी आत्मा ही सत् है ।

जाग्रत अवस्था में जो व्यवहार होता है वह ज्ञानी अज्ञानी सभी देह को मैं मानकर होता है । जैसे आपने किसी से पूछा कि भाई ! आप आये ? तो उत्तर में वह कहेगा हाँ भाई मैं आया हूँ । व्यवहार में भी यह मेरा पिता, यह मेरी माता यह मेरा भाई, यह मेरी बहन, यह मेरा पति, यह मेरी पत्नी, इस प्रकार जाग्रत अवस्था से स्पष्ट होता है कि यह स्थूल शरीर मैं हूँ ।

स्वप्नावस्था में मन को लेकर सब व्यवहार होता है। आंख बंद है, मुंह बंद है, हाथ पैर अचल पड़े हैं फिर भी कहता है रात स्वप्न में वहाँ गया वहाँ मैंने फिल्म स्टार को देखा फिर मैंने उनसे बाते की उन्होंने गाना सुनाया । फिर खाया बड़ा मजा आया यहाँ मैं का अर्थ शरीर नहीं वह तो जहाँ का तहाँ घरमें पड़ा था यहाँ सब क्रिया का सम्बन्ध मनसे सिद्ध हो रहा है ।

अब गहरी निद्रा में न तो शरीर का भान है न मन का काम है, यहाँ न बुद्धि अहंकार है यहाँ तो सारा शरीर एक मृत अवस्था की तरह शान्त पड़ा रहता है । फिर भी गहरी नींद से उठकर कहता है मैं रात सुख से सोया मुझे कुछ खबर नहीं पडी । यहाँ मैं सुख से सोया का अर्थ शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सुख से सोये पड़े रहे । इसका मतलब है वहाँ कोई एक अवश्य था जो इन सब के सुख से सोने को और मन, बुद्धि द्वारा

कुछ न जानने को जानने वाला कोई एक रहता है अन्यथा यह कैसे कहा जाता कि मैं सुख से सोया पड़ा था एवं कुछ न जान पाया । वहाँ मैं ही इस सुषुप्ति अवस्था का जानने वाला साक्षी आत्मा विद्यमान रहता हूँ । यदि मैं वहाँ न होता तो सुबह उठकर यह कैसे कहा जाता कि रात में सुख से सोया व कुछ नहीं जान पाया । शरीर, मन, बुद्धि सोते रहे इसलिये मन बुद्धि को कुछ पता न चला, यह मैंने जाना । अतः सिद्ध होता है कि मैं मन, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण व शरीर से पृथक इनका द्रष्टा साक्षी आत्मा इन सबसे भिन्न हूँ, सत् स्वरूप हूँ ।

अब यह निर्णय निकला कि सत के जो लक्षण है वह सब मुझ में घटते हैं । मैं निरन्जन, निराकार, निर्विकल्प, सत चित, आनन्द, अजर अमर, आत्मा हूँ ।

व्यवहार में हम यह मेरा है, यह मेरी है इस प्रकार जो कहते हैं, उस दृश्य से कहने वाला, देखनेवाला, जाननेवाला, अनुभव करनेवाला मैं आत्मा सर्वथा पृथक् ही रहता हूँ । किन्तु यह बोध भी ज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था ही है । ज्ञान की पूर्णता इस अनुभव में है कि मैं ही सर्व रूप हूँ । अर्थात् मेरे अतिरिक्त अन्य किंचित भी नहीं है । ऐसा अभेद ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है । **'अभेद दर्शनं ज्ञानम्'** मैत्रयी उप. । जैसे मेरा मकान, मेरा जूता, मेरा कुत्ता, मेरा घोड़ा, मेरी कार – मैं सबको जानता हूँ क्योंकि मैं चेतन हूँ यह सब मुझे नहीं जानते, क्योंकि यह सब जड़ एवं दृश्य हैं ।

बाहर की प्रत्येक वस्तु मन, बुद्धि के बिना नहीं जानी जा सकती । मन का द्रष्टा मैं मन से पहले वहाँ पहुँच जाता हूँ जहाँ मन पहुँचता है सब जगह मैं रहता हूँ इसलिये मैं सर्व–व्यापक हूँ, ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ हूँ ।

किसी पदार्थ से नाम, रूप निकाल दिया जाय तो अपना अस्ति, भाति, प्रिय अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप ही शेष रह जाता है वही मैं हूँ । नाम, रूप मिथ्या है और जो उनका आधार जो एक सत वस्तु है, वह मैं हूँ ।

■■■

अनुभव की बात

तुम्हारा नाम लेकर कोई निन्दा करे, गाली दे अथवा झूठी सच्ची प्रशंसा करे तो भले वह करता रहे किन्तु उसकी बात पर ध्यान मत दो । यह निन्दा स्तुति दोनों तुम्हारे सत्य स्वरूप से किञ्चित भी सम्बन्ध नहीं रखती है । जिसे देख सम्मुख व्यक्ति टीका कर रहा है निन्दा, स्तुति कर रहा है, गाली दे रहा है या मार रहा है वह तुम १००% नहीं हो । जहाँ तक कोई कुछ कर सकता है वहाँ तक तुम्हारा होना नहीं है, वह सब तुम्हारे दृश्य शरीर, प्राण, इन्द्रिय या मन, बुद्धि, अहंकार तक ही चोंट पहुँचा सकता है । स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर तक ही उसकी पहुँच हो सकती है । तुम्हारे तक वह कभी नहीं पहुँच सकता, तुम्हें तो शस्त्र, अग्नि, पवनादि कोई भी स्पर्श नहीं कर सकते ।

बाह्य वस्तुओं, व्यक्तियों पर तुम्हारे मोह की चिपकी परत को उतार फेको, ज्ञान अग्नि में उसे जलाकर भस्म करदो । वहाँ से अपनी ममता, अहंता, श्रद्धा की जड़ को उखाड़ फेंको । इस बात को दिल में बैठालो कि जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ मुझे माता–पिता, परिवार व समाज से प्राप्त हुआ है वह शरीर, नाम, भाषा, जाति, सम्बन्ध, उपाधियाँ आश्रय व मृत्यु वह सब मैं नहीं और वह सब मेरे नहीं । इस निश्चय से जीव तत्काल समस्त क्लेशों से, दुःखों से, भय से मुक्त हो जाता है । देह में रहते हुए जनक राजा की तरह जीवन्मुक्त ही नहीं विदेह मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है ।

तुम पर टूट पड़ने वाले सभी संकट सब प्रकार की चिंता और दुःख पलायन कर जावेंगे । सारा जगत् का रूप ही पलट जावेगा । सभी विषम परिस्थिति बदल जावेगी । तुम्हारे देखने, करने व जीने का तरीका ही बदल जावेगा । जीवन फूल की तरह सुगन्धित एवं निर्भार हो जावेगा ।

आप जिसे जो कुछ देते हैं अच्छा–बुरा वह सब आप ही अधिक मात्रा में प्राप्त करते हैं । जैसे किसान जो कुछ खेतमें बीज डालता है वह किसान उसी फल को अधिक रूप में प्राप्त करता है । अतः इस प्रकृति के अखण्ड सिद्धान्त को जानने वाला व्यक्ति फिर क्यों न अधिक से अधिक, अच्छा से अच्छा बांटने की चेष्टा करेगा, जिसे वह सबसे अधिक पाने की आशा रखता है ।

अपने को सिखाकर ही दूसरे को सिखाओ

प्रत्येक व्यक्ति अन्य को उपदेश करने में अपने को कुशल समझता है परन्तु जब तक उस उपदेश को वह स्वयं ग्रहण नहीं करता है अपने जीवन आचरण में नहीं ढालता, पालता है तब तक उसके जोरदार भाषण का कोई प्रभाव श्रोता पर भी नहीं पड़ता है । अपनी शिक्षा अपने को ही दे, अपने को ही शिक्षा अनुरूप बनाले, तभी वह ज्ञान श्रेष्ठ है ।

व्यक्ति को चाहिये कि वह अन्य को त्याग, वैराग्य का पाठ पढाने की अपेक्षा अपने जीवन में विचारे कि मुझे जीवन निर्वाह जितना दोनों समय भोजन मिल जाता है तो शेष समय मुझे सत्संग करना चाहिये । शान्ति से एकान्त में बैठ भजन ध्यान करूँ । व्यर्थ की बाते कर, अखबार, खबर कागज, मेगजिन आदि पढ़ने में, सिनेमा कहानी संगीत सुनने में अपने जीवन की अमुल्य श्वांसों को व्यर्थ नष्ट न करूँ ।

मनुष्य के जीवन में यथा प्राप्त परिस्थिति में सन्सोष नहीं दिखाई पड़ता है । वह धन की दौड़ में उतरता जाता है, इतना है, इतना हो जाय । मुझसे ज्यादा वह कैसे कमा रहा है ? मैं उससे अधिक किस प्रकार छल, बल, कष्ट पाकर प्राप्त करूँ । इस प्रकार की चिन्ता एवं प्रयत्न करने वाले प्रायः सभी लोग लगे हुए हैं । ऐसे धन एवं विषय भोग के भिखारी भले करोड़पति ही क्यों न हो, अध्यात्म में प्रवेश नहीं पा सकते ।

संसार में जो कर्म करने को मिला है, पूर्ण सत्यता, लगन से प्रभुसेवा के रूप में करे, यह काम करने में आनन्द ही उसका फल है ।

फलकी आशा से कर्म न करे । काम करते करते समय निकाल सत्संग अवश्य करते रहे । सच्ची शान्ति धन से नहीं धर्म से है ।

जीव को सच्ची शान्ति इस लोक के भोगों से लेकर स्वर्ग बैकुण्ठादि लोकों को प्राप्त कर भी आज तक ना मिली है न कभी मिल सकेगी । क्योंकि इन्द्रिय जन्य विषय जीवन निर्वाह के तो साधन है, पर अखण्डानन्द के साधन नहीं । इन्द्रिय स्वयं नाशवान है तथा उनसे प्राप्त विषय भोग पदार्थ भी क्षरण धर्मी है ।

अखण्डानन्द तो जीव को आत्मिक धन, आत्मिक ऐश्वर्य का भान होने से ही अनुभव में आ सकेगा । जीव को उसके वास्तविक आत्म स्वरूप का, आत्मिक ऐश्वर्य का आत्मिक महानता का भान नहीं हो रहा है, इसीलिये वह राजाओं का राजा, शाहों का शाह, शहनशाह होकर भी भिखारी, कंगाल बना यहाँ–वहाँ इससे–उससे सुख, शान्ति, प्रेम की भीख मांगता फिर रहा है ।

हे धनेश्वर ! तू भ्रान्ति में पड़कर वस्तुओं का, सगे–सम्बन्धियों का, पद–प्रतिष्ठा, धन–सम्पत्ती का गुलाम क्यों बन रहा है ? तू अपने होंश को संभाल । तू तो नित्यानन्द, अखण्ड, परिपूर्ण है । अपने आत्मिक धन के खजाने को क्यों भूल बैठा है ? खजाने तेरे चरणों के नीचे और तू उस पर खड़ा भीख मांग रहा है ? वह भी इन संसारी लोगों से जो स्वयं भिखारी हो तुझसे सुख की आशा लगाये बैठे हैं ।

भिखारी सारी दुनिया दाता एक आत्माराम ।

संत, शास्त्र जीव को 'तत्त्वमसि' कहते हैं, तो हे आत्मन् ! क्या तुझे विश्वास नहीं होता है मैं स्वयं विश्व सम्राट परमात्मा हूँ । मैं ब्रह्म नहीं मैं विश्व का स्वामी नहीं, मैं मुक्त नहीं ऐसा कुभाव जाग्रत होते ही, अपने प्रति ऐसी शंका को स्थान देने की अपेक्षा गोली या जहर खाकर मर जाना अच्छा होगा । मुझे परमात्मा नहीं मिल सकता ऐसा कहने के पहले जिह्वा कट कर गिर जाना उचित होगा ।

सकामी लोग नाना कामना, वासना इच्छा पूर्ति के लिये मंत्र, माला, जप, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास, तीर्थ, मन्दिर, होम, यज्ञ आदि साधनों में ही अपना जीवन व्यतीत करने में लगे हुए है । अज्ञानी सकामी देह रक्षामें जो देवालय के तुल्य है, उसी में अटक उलझ बैठे है । किन्तु जिस आत्मदेव के दर्शनार्थ यह देह रूप देवालय बनाया है उस अन्तर्यामी देव को निज आत्मा को सभी भुला बैठे है ।

समझदार मनुष्य देह रूप देवालय के भीतर जाकर आत्मदेव का साक्षात्कार कर जीवन धन्य बना लेते है । इस जन्म–मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं । अर्न्ययामी आत्मदेव का साक्षात्कार करना ही इस देव दुर्लभ मानव जीवन की सच्ची उपयोगिता है ।

परमात्मा अखण्ड अर्थात् सर्वव्यापक होने से वह सब देश, सब काल एवं सब रूप में विद्यमान है । परमात्मा का देश, काल एवं वस्तु से विभाजन नहीं किया जा सकता ।

देश काल दिशि विदेशहुमाहि ।
कहहुँ सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहि ।।

अस्तु परमात्मा सूर्य, चन्द्र व सभी तारों नक्षत्रों के रूप में विद्यमान है । यहाँ सभी वस्तु, पदार्थ परमात्मा के ही मन्दिर हैं, जिनमें परमात्मा शक्ति चैतन्य रूप से विद्यमान हैं । सारांश में प्रत्येक कण परमात्मा का ही मन्दिर है । विवेकी पुरुष को प्रत्येक वस्तु द्वारा परमात्मा का बोध मिलता है । शरीर तुम्हारे सबसे नजदीक का पदार्थ है यह परमात्मा का सबसे नजदीक मन्दिर है । पर इस मन्दिर को ही सर्वस्व अथवा मैं मान लेना नहीं, प्रत्युत इस मन्दिर के भीतर प्रवेशकर अपने वास्तविक आत्म स्वरूप का दर्शन करना है । देह को अपना स्वरूप जानना सब पापों का मूल है । तादात्म्य करना है तो देह के साथ नहीं, आत्मदेव के साथ करना है । इस तरह आत्मदेव के साथ तादात्म्य करने से समस्त विश्व

एक विराट मन्दिर हो जावेगा क्योंकि परमात्मा सब देहों में विद्यमान है प्रत्येक दृश्य में पदार्थों में,प्राणी में, मनुष्य में परमात्मा की झांखी होने लगेगी और यही परमात्मा की सच्ची पूजा है ।

यदि तुम्हारे हृदय में परमात्मा भाव जाग्रत नहीं हो रहा है तो ऐसे ग्रन्थों का स्वाध्याय करो जो आत्मा का बोध जाग्रत कराते हों । ऐसे सन्तों के सम्पर्क में आओ, कुछ समय उनके साथ रहो, सेवा करो, श्वाँस का ध्यान करो । जैसे घर, बर्तन, कपड़े, शरीर को रोज साफ करते हो इसी तरह अपने मन को भी नियमित सत्संग की झाड़ू लगा कर साफ रखो । देह भाव रूप मल, कर्ता भाव रूपी अहं मल जमने न पावे सदा स्वच्छ आत्मा में रहो ।

जब तक मैं कर्ता हूँ यह भाव मन में बैठा है, तब तक तुम्हारा देहाभिमान गलित नहीं हुआ है । दूसरों में जो दोष तुम्हें दिखाई पड़ते हैं उन दोषों से तुम दूर रहो । परदोष चिन्तन कभी मत करो । अन्यथा तुम उन दोषों से ग्रसित हो ही जाओगे । दूसरे के दोषों को ही देखते रहोगे तो फिर तुम्हारे दोषों को कब निकालोगे ?

प्रत्येक क्रिया में परमात्मा की भावना जाग्रत करो । हमारे बिना विचारे भी भोजन को पचाने, रस को रक्त रूप में परिणित कर शरीर को स्वस्थ बनाये रखने की क्रिया कौन करता है ? शरीर की नस नाड़ियों में कौन रक्त संचार करता रहता है ? शरीर में कौन श्वाँसो को भीतर–बाहर, ऊपर–नीचे कर रहा है । तेरे शरीर की सभी क्रियांए जैसे परमात्मा के द्वारा हो रही है इसी प्रकार सभी प्राणियों की रक्षा परमात्मा द्वारा ही हो रही है । फिर अपने व परिवार के रक्षण में सारा जीवन व्यतीत करदेना एवं अमृत आत्मा का विचार न करना, वह जीवन की सबसे बड़ी हानि है '**महति विनष्यति**' ।

■■■

तुम्हारा भाग्य विधाता कौन ?

जिसके जीवन में जिस प्रकार के विचारों की प्रधानता रहती है अधिकांश वही उसके स्वप्न में सकार हो सम्मुख होते हैं, वही विचार मृत्यु के समय हमारे मन में प्रकट होते हैं । अपनी अन्त मति के अनुसार ही हमारा भावी जीवन हमें भोगने को मिलता है ।

समझो कि किसी व्यक्ति ने सम्पूर्ण जीवन इन्द्रिय विषय भोग भोगने में ही नष्ट किया किन्तु ज्ञान, धर्म, विधि निषेध का विचार ही नहीं किया । अब वह मनुष्य जब मरता है, तब उसके मन में किसी ज्ञानी, भक्त, त्यागी माता, पिता के घर जन्म लेने की इच्छा तो होगी नहीं, उसकी इच्छा की तृप्ति के लिये कुत्ते, बिल्ली, सूअरादि पशु, पक्षियों की योनियों में ही जाना पड़ेगा । क्योंकि ऐसी नीच योनियों में जन्म लेकर ही इसे विषयों को भोगने की स्वतन्त्र एवं शक्ति विशेष रहेगी । नगर का सांड बनकर तो प्रत्येक गायों के साथ संभोग कर सकेगा । पक्षी बनकर तो हर बाग, हर वृक्ष के फल खा सकेगा, मच्छर–खटमल–जूँ बन कर तो गुप्तागों का रक्त पी सकेगा । मक्खी बनकर तो किसी के नग्न शरीर को देख सकेगा । इस प्रकार आप अपने भविष्य का निर्माण कर्ता स्वयं ही ब्रह्मा, विधाता देव हैं । अस्तु तुम्हें जो करना है करो किन्तु करने के पहले उसके भले बुरे परिणाम का नग्न दृश्य सम्मुख लाकर फिर कर्म करने में प्रवृत्ति करना ।

अपना भाग्य, नसीब, तकदीर बनाना हमारे ही हाथों में है । जैसे मन्दिर घुम्मज के नीचे जैसा उच्चारण करते है वैसा ही गूंज पुनः होती सुनाई पड़ती है । इसी प्रकार इस आकाश गुम्मच में जैसा विचार दूसरों के प्रति छोड़ेंगे वही लौट कर दूसरों से तुम्हें मिलने वाला है । किसी पर संकट डालोगे तो वह सभी मुशीबत तुम्हारे जीवन में भी संकट डालेगी । यदि तुम्हारे मन में प्रेम है तो तुम्हारे बाहर भी प्रेम मिलेगा । यदि तुम्हारे भीतर क्रोध, घृणा, अहंकार होगा तो बाहर भी वैसा ही मिलेगा ।

तुलसी यह तन खेत है, मन वच कर्म किसान ।
पुण्य पाप दोउ बीज है, जो वोये सो ले निदान ।।

अपने आत्मभाव में ठहर जाना, मन का आत्मभाव में लीन हो जाना यही स्वभाविक और सर्वोत्तम परोपकार है । तुम्हारे मनमें गढे हुए अहंकार रूप मैल को बाहर निकाल कर उसमें आत्मभाव दृढ हो जावे इसी में उच्च प्रकार का परोपकार है ।

सभी शरीर परमात्मा के है । सभी आंखों से परमात्मा देखता है, सभी कानों से वह सुनता है, सभी हाथ से वह करता है, सभी पैरों से वह चलता है । हमारा काम ईश्वर की इच्छानुसार चलने का है ।

यदि तुम्हारी इच्छा परोपकार करने की है तो उठो, जागो एवं श्रेष्ठ महापुरुषों के शरण में जाकर अपने अनादि से भूले आत्म स्वरूप की स्मृति को जाग्रत करलो । अपने सच्चे स्वरूप में लीन हो जाओ जिस प्रकार देहभाव में लीन होकर, सब क्रियाएं करते आ रहे थे इसी प्रकार आत्मभाव में स्थित होने से तुम्हारा महान परोपकार हो सकेगा ।

यह देह मेरा है इस प्रकार की भावना होते ही उस वस्तु अथवा देह में अहंकार होना, आसक्ति होना सम्भव है । जब आसक्ति हो जाती है तो उसकी प्रजा रूप समस्त दुःख तो फिर स्वयं ही बिना बुलाये आ पहुँचेंगे । हमारे समस्त दुःखों का मूल आसक्ति ही है ।

जहाँ मैं व मेरा नहीं, वहाँ दु:ख भी नहीं होता है । मैं कर्ता हूँ, मेरा नाम हो, इस प्रकार की भावना से कोई कर्म न करो । प्रत्येक कर्म प्रभु ही कर रहे है, प्रभु ही करा रहे है, इसका फल भी प्रभु को प्राप्त हो ऐसी भावना रखना चाहिये । न अपने को कर्ता बनाओ न भोक्ता बनाओ बल्कि दोनों का साक्षी जानो । परमानन्द तुम स्वयं हो । वह तुम्हारा आत्मा है, वह आत्मा तुम हो । अपनी आत्मा को पहचानो । संसारी मृग मरीचिका जल के पीने के पीछे लोग दौड़ रहे हैं । उस कारण परमानन्द को वे लोग छोड़ बड़ी भूल कर रहे हैं । जगत् के नाशवान पदार्थों के पीछे शाश्वत सुख को ठुकरा रहे हैं ।

तुम्हारे में ही महान अमृत का सागर उछल रहा है, उसी में एक बार डुबकी लगा कर तो देखो । सर्व सुख तुम्हारे हृदय मन्दिर में ही छिपा पड़ा है । कही बाहर खोजने, खरीदने के लिये जाने की जरुरत नहीं है ।

मुस्कराते हुए गुलाब के फूल में, उगते हुए सूर्य में चमकते तारो में, चन्द्र की मधुर रोशनी में, सूरज के तेज में, फलों के स्वाद में, पक्षियों की आवाज में तुम्हारी ही ज्योति प्रकाशमान हो रही है । यह सब तुम्हारा ही रूप है । सभी रूपों में तुम ही एक मात्र झलक रहे हो ।

जीव अपने वास्तविक स्वरूप को न जानने के कारण सुख को बाहर के पदार्थों में, पदों में खोज रहा है । यदि सांसारिक पदार्थ बहुत कष्ट उठाकर प्राप्त कर भी लिया तो एक दिन वे सब नष्ट हो ही जाने वाले हैं । प्रत्येक जीव प्रतिक्षण अनन्तकाल से धन, कीर्ति, पद, सम्पत्ति, पति पत्नी, पुत्रादि के लिये दौड़ रहा है, उन्हें पाने के लिये चक्कर लगा रहा है। हे आत्मन् ! तू ने सभी इच्छित पदार्थों को प्राप्त भी कर देख लिया कि वे सब मिलकर नष्ट हो भी गये और तू जहाँ का तहाँ ज्यों का त्यों भिखारी ही बना रहा । उनसे इतना दुःख पाकर, अपमान पाकर भी उनका मोह नहीं छोड़ फिर भी उनके पीछे ही दौड़ रहा है । ओह ! तेरी दशा कितनी दयनीय है ।

जिसने शुद्ध सदाचारी जीवन बनाया है, ब्रह्मचर्य या संन्यास भी धारण कर चुका है, नाना प्रकार के लोक सेवार्थ दान धर्मशाला, स्कूल, कालेज, अन्नक्षेत्र, औषधालय, गौशाला, कूप सरोवर सड़के बनादी है । बड़े–बड़े यज्ञ कर चुका है किन्तु जिसने अपने को देहाध्यास से, तीन अवस्था से, तीन शरीर से, तीन गुणों से, पंचकोशों से पृथक आत्मरूप से साक्षी रूप से नहीं जाना है, वह कभी परोपकारी नहीं हो सकता, उसके सभी कर्म बन्धन रूप ही होंगे ।

■■■

साधु का लक्षण सिद्धि नहीं

तुम सर्व प्रथम अपने आत्मा की शुद्धि करो, अपने आचरण को शुद्ध बनाओ तो फिर तुम समस्त जगत् के जीवों को ढोल बजा कर जाग्रत कर सकोगे । अतः सर्व प्रथम तुम अपना कल्याण करलो यही सबसे बड़ा उपकार होगा ।

अपने कल्याण करने के लिये जंगल जाने की या कपड़े रंगने की अथवा केश बढ़ाने, मुण्डन कराने तथा नाम बदलने की जरूरत नहीं है । गृह त्याग कर परिवार के प्रति शत्रुभाव करने की भी जरूरत नहीं है । सच्चा वैराग्यवान् साधु वह है जिसके मन में ज्ञान अग्नि प्रज्वलित हो गई है, जिसका देहभाव जलकर भस्म हो चुका है । जिसमें अहं–मम का नाश हो चुका है जो अपने सहित सर्व को ब्रह्म रूप देखता है या अपने अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखता है, वही सच्चा आत्मज्ञानी है ।

आत्मा का प्रकाश कोई भगवा वस्त्र पर निर्भर नहीं करता । आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र है । वह किसी जाति, सम्प्रदाय, गुरु, मठ, आश्रम रीति–रिवाज में बन्धी हुई वस्तु नहीं है ।

कोई हठयोगी अपने को शाश्वत कर दिखाता है । नाड़ी की गति हृदय की धड़कन बन्द कर दिखा देता है यह कोई विशेष बहादुरी का काम नहीं है। हाँ मेंडक का काम करके दिखाने में वह कुशल हो गया है, इतना

ही कहा जा सकता है । जो सहज था उस मेंडक जन्म के अभ्यास को मनुष्य जीवन में साधन द्वारा सिद्धकर दिखाया ।

यदि कोई पानी में डूब कर अपनी सिद्धि का प्रदर्शन करता है तो उसने अपने पूर्व मछली जन्म के सहज कला का मनुष्य जीवन में कठिन अभ्यास द्वारा सिद्ध कर दिखाया । या जल पर चल कर दिखाया तो नाव पर जाने के लिये जो एक रूपया किराया लगता था उसे बचाने के लिये जीवन के २० वर्ष नष्ट किये, तो कोई समझदारी का काम नहीं किया । इस प्रकार की सिद्धिसे जगत् में मूर्खलोगों से ख्याति, प्रशंसा प्राप्त हो जाती है । आत्मज्ञान में इस प्रकार सभी सिद्धि बन्धनकारक है ।

तुम्हारा सुख तुम में है

सभी जीवों के जीवन, सभी प्राणियों के प्राण एक अपने आत्म देव हैं। उनमें श्रद्धा करने से, उन्हें अपना स्वरूप, सर्वस्व, सर्वाधार समझने से जीव अनादि काल के समस्त पुण्य पापों से तत्काल मुक्त हो जाता है । जिसे पाने के लिये तुम भिखारी की तरह इधर–उधर भटक रहे हो वह शान्ति तो तुम्हारे अन्दर है। वह तो तुम्हारा स्वरूप है, इसे लेकर तो तुम अपने साथ गर्भ से बाहर आये । उसे छोड़ तो तुम्हारा जीवन ही नहीं, तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं । बाहर का विषय सुख तो तुम्हारे आत्मसुख की परछाया है । परछाया को वास्तविक सुख मत जानो ।

तुम्हारे उद्धार का सुख का कारण कोई देव या गुरु बाहर नहीं है तुम्हारा आत्मदेव तुम में ही है, तुम ही हो । गुरु कृपा भी तभी काम आयेगी जब तुम्हारी कृपा प्रथम अपने ऊपर होगी । वह अपनी ब्रह्म जिज्ञासा की तीव्रता पर निर्भर है ।

हे जिज्ञासुओं। तुम यदि ऐसा मानते हो कि मुझे अभी लोक कल्याण करना, परोपकार करना है तो प्रथम तुम अपना ही उद्धार करलो । तुम अपना ही कल्याण करलो। अपने से पूछकर तो देखो कि क्या तुमने अपना कल्याण करलिया है ? यदि नहीं तो सर्व प्रथम तुम अपना कल्याण करलो । तुम्हारे कल्याण में सर्व का कल्याण छिपा है ।

जब तक एक दूसरे में दोष खोज करेंगे, तब तक हमारी दृष्टि में समता, एकता प्रेम नहीं घट सकेगा ।

छोटे–बड़े, शिक्षित–अशिक्षित, सुन्दर–कुरूप, स्वस्थ–रोगी, सदाचारी–दुराचारी बच्चे के प्रति माता का मनोभाव, प्रेम समान बना रहता है । वह ऊंच–नीच, छोटे–बड़े, सुन्दर–कुरूप का, पण्डित–मूर्ख का, गन्दा–शुद्ध का भेद भाव नहीं करती ।

दीन तथा पतित लोगों के प्रति प्रेम भाव, गरीब धनाढ्य के प्रति समता भाव से जो देखता है, वही सच्चा परोपकारी आत्मकल्याणी सच्चा सुखी है ।

इस समस्त जगत् के तुम ही एक द्रष्टा हो इस भावना से कार्य करो किन्तु मन में 'मैं कर्ता हूँ' यह भाव आने न पावे इस बात का ध्यान रखना है । समस्त विश्व के प्रति ईश्वर दृष्टि बनी रहना चाहिये ।

यह जगत् तुम्हारे सदा का निवास स्थान नहीं है प्रत्युत तुम्हारे प्रवास का आश्रयस्थान अर्थात् धर्मशाला है यह सूत्र को सदा याद रखो इस अनित्य संसार तथा नश्वर देह में अहंता–ममता न कर मुक्त रहो ।

जैसे पुस्तक को पढ़कर, न्यूजपेपर को पढ़कर रखदिया जाता है । कर्म, उपासना या योगाभ्यास का सदा दास बने नहीं रहना हैं । मल, विक्षेप तथा आवरण दोष दूर हुआ तब इन साधनों को पकड़े रहने की जरूरत नहीं । पानी भूमि से प्रकट होने के बाद उन उपकरणों को छोड़ दिया जाता है जिनसे वह कूप खोदा गया था, अन्यथा शुद्ध स्वच्छ पानी नहीं मिल सकेगा । इसी तरह अपने कल्याण के लिये जगत् का उपयोग कर आगे अपने मन्जिल पर पहुँच जाना है ।

किसी भी शहर, गांव एवं व्यक्ति की सेवा निष्काम भाव से करे किन्तु बदले की या प्रशंसा की भावना लेकर न करें । गृहस्थाश्रम में रहो किन्तु उसे भी धर्मशाला एवं उसमें रहने वालों को यात्री रूप ही जानो ।

शरीर पात होने का समय आवे उसके पहले अपने धन सम्पत्ति को त्याग गरीब, दीन, दुःखी, अबला, अनाथ, विकलागों के प्रति अहंकार रहित हो सेवा भावना करे । हमारे ऋणि कोई नहीं है यदि हमारी कोई सेवा ग्रहण कर लेता है, उन जीवों का अपने ऊपर उपकार मानना चाहिये । उपकार का बदला लेने की भावना का अंकुर भी न फूटने पावे इस बात का ध्यान रखे ।

याद रखो ! जिसके भय से सूर्य, चन्द्र, पवन, यम अपना अपना कार्य कर रहे हैं, वह ब्रह्म है, वही तुम्हारा स्वरूप है । अतः अज्ञान निद्रा रूप देह भाव से उठो एवं अपने परमात्म स्वरूप में स्थित हो जाओ । वह और मैं एक हैं, यह विचार ही सर्व दुःख नाशक है । हे आत्म बन्धुओं । अपने आत्म केन्द्र को भुलाकर बाहर देह परिधि में भ्रमण मत करो । केवल अपने आत्म केन्द्र में स्थिति करो ।

दूग्ध को पानी में डालो मिल जावेगा किन्तु युक्ति द्वारा दूध को जमाकर दही मथने से मक्खन निकाल पानी में डाल दिया जावे तो वह पानी में मिल नहीं सकेगा । इसी प्रकार साधन चर्तुथ सम्पन्न होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु से एकवार तीन गुण, तीन शरीर, तीन अवस्था, पंचकोश एवं अविद्या माया से पृथक् मैं द्रष्टा, साक्षी, असंग, आत्मा हूँ इस प्रकार दृढ़ता से जान लेने पर फिर देह में अहंता–ममता नहीं कर सकोगे ।

■■■

मोक्ष पाने के चार सूत्र

(१) जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो कुछ देहके पिता–माता, परिवार एवं समाज से उपाधियाँ प्राप्त हुई है, वह मैं नहीं, वह सब मेरी नहीं है। इसप्रकार स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थों से पृथक् मैं केवल असंग आत्मा हूँ। यह पिता–माता, नाम, भाषा, जाति, आश्रम, सम्बन्धी उपाधि तथा जन्म–मृत्यु से मेरा किञ्चित् भी सम्बन्ध नहीं है ।

(२) मैं सभी पदार्थों से पृथक् अति सूक्ष्म हूँ, मैं सबको देखता जानता हूँ किन्तु मुझे कोई देख नहीं सकता, जान नहीं सकता ।

(३) जो जो वस्तु जगत् में दिखाई पड़ती है, वह सब मैं ही एक मात्र हूँ मेरे अलावा यहाँ किञ्चित् भी अन्य नहीं है । अखण्ड ब्रह्म सत्ता में अन्य को ठहरने का स्थान ही कहाँ ?

(४) सम्पूर्ण जगत् आकाश की तरह शून्य है अर्थात् बन्ध्या पुत्र की तरह है ही नहीं । इस निश्चय से भौतिक पदार्थों में सत्य एवं सुख बुद्धि नहीं होगी, न कामना वासना उठ सकेगा ।

बाहर से सभी क्रिया करते हुए, अन्दर से अपने को निष्क्रिय अकर्ता जानते हुए मुक्त बिहारी बन विचरण करो । उत्पत्ति तथा विनाश, जवानी तथा मरण से रहित ऐसे परमशान्त परमानन्द स्वरूप में अपने मन, बुद्धि को स्थिर करो । यही शुद्ध एवं शान्त ब्राह्मी स्थिति है ।

मैं चैतन्य हूँ, यह सब लोक चैतन्य है, यह सब दिशाऐ चैतन्य है और सब प्राणी मात्र भी एक चैतन्य है । वही मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, अखण्ड, निर्विकार, निराकर, निष्क्रिय ज्योति स्वरूप चैतन्य द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ । इस प्रकार निश्चय करके निर्विकल्प अवस्था में वृत्ति ठहरा कर स्वस्थ रहो ।

आत्मा स्वप्रकाश, सत एवं चित्स्वरूप है जबकि मन कल्पित असत् एवं जड़ रूप है । मन के शुभाशुभ क्रिया का पुण्य–पाप जीव के सिर पर आ जाते हैं । क्योंकि जीवने मन के साथ तादात्म्य, गहरी एकता, मित्रता कर रखी है । इसी प्रकार इस प्रकृति के कार्य रूप मन की क्रिया में अहंकार करके जीव सुख दुःख का भोक्ता बनता है । जीव का सच्चा मित्र तो एक मात्र परमात्मा ही है । आत्मा, मन तथा वाणी का नियामक, प्रेरक संचालक है। अविद्या में जब आत्मा का प्रतिविम्ब पड़ता है तब आत्मा की संज्ञा जीव हो जाती है तथा इसी आत्मा का प्रतिविम्ब जब माया में पड़ता है तो इस आत्मा की संज्ञा ईश्वर हो जाती है । दोनों उपाधि से रहित आत्मा स्वयं परमात्मा ही है ।

जबसे इस जीव ने मन के साथ एकता स्थापित की है तबसे जीव ने देहाध्यास, कर्तृत्वाभिमान कर जन्म–मरण की भ्रान्ति में पड़ गया है । यह जीव मूल स्वभाव से निष्कर्म है । फिर भी कर्ता भोक्ता बन बैठा है । वास्तव में तो जीव मन का मालिक है परन्तु मोह वश मन का नौकर बन नाच रहा है । चौरासी में भटक रहा है ।

मृत्यु क्या है ? जैसे एक व्यक्ति पुराने घर या कपड़ों को छोड़ एक नये घर, नये महल में प्रवेश करता है या पुराने कपड़े छोड़ नये कपड़े धारण करता है तो उसे एक प्रसन्नता होती है, पुराने के छूटने का दुःख नहीं होता है। अज्ञानी दुःखी हो छाती कूटते है अपने निकटतम सम्बन्धी के मरण पर या अपनी मृत्यु से भयभीत होते है किन्तु आत्मज्ञानी का तो मरण नहीं उसी प्रकार उसे मृत्यु से भय एवं दुःख भी नहीं है ।

जैसे आकाश स्थित चन्द्रमा का पृथ्वी पर रखे जल पात्र में प्रतिविम्ब पड़ता है उस बर्तन को हिलाने से प्रतिबिम्ब भी कल्पित होता दिखाई देता है परन्तु आकाश स्थित चन्द्रमा ज्यों का त्यों अचल ही रहता है । इसी तरह शुद्धात्मा का प्रतिबिम्ब जीव, देह की मृत्यु से अपने को मरा मानता है ।

मृत्यु अत्यन्त ही आनन्द स्वरूप एवं उपकारक है । इन लाभों को यदि आप जानले तो आपके मन से मृत्यु भय समाप्त हो जायेगा । तब जीवन जीने का मजा ले संकेंगे ।

मृत्यु सिकन्दर, हिटलर, कंस, रावण, शकुनी, चंगेजखान जैसे महापापियों का जीवन समाप्त कर पाप कर्मों से मुक्ति दिला देती है । अन्यथा उन्हें पाप कर्मों से रोकने की किसी में साहस नहीं था ।

मृत्यु अहंकारी व्यक्तियों की मृत्यु करा उनके बल, पद, धन, सम्पत्ति के अहंकार से मुक्ति दिला देती है, अन्यथा अंहकारीयों के अंहकार चकनाचूर करने की किसी में सामर्थ्य नहीं है ।

मृत्यु राजा व रंक का भेद मिटा देती है, दोनों को स्मशान में जमीन पर लेटाकर, लकड़ी में जलाकर भस्म कर देती है । जिन्देगी देती है, जिन्दगी का अन्तिम परिणाम सबका यही है ।

भयंकर रोग से ग्रसित लोगों का अनेक पुराने जीर्ण शरीर से घरवाले पड़ौशी सभी नफरत करते रहते थे कोई पास आ सेवा करना नहीं चाहते ऐसे व्यक्ति को मृत्यु उसके शरीर से मुक्ति दिलाकर नूतन शरीर प्रदान करादेती है ।

सामाजिक दृष्टि से जो शुद्र मानेजाते हैं, किन्तु उनके विचार बहुत ऊँचे है ऐसे व्यक्ति धार्मिक कार्य में भाग नहीं ले पाते, मृत्यु द्वारा उन्हें अपने संस्कारों से अच्छा धार्मिक परिवार में जन्म मिलजाने से वे अच्छे उन्नती के कर्म करपाते हैं ।

यदि मृत्यु न होती तो जीव पुराने शरीर में बैठे रहते । न वह देख पाते, न चल पाते, न मल–मुत्र का त्याग दूर जाकर कर पाते । घर में ७१ पीड़ी के दादा, परदादा बने रहते तो छोटे से मकान में रहने की जगह भी नहीं रहती । शरीर घटते घटते मक्खी, मच्छर, चींटी जैसा छोटा हो रेंगते रहता ।

जिस मृत्यु के नाम से लोग डरते हैं वह मृत्यु परमात्मा का अभिशाप नहीं बल्कि आर्शिवाद है । यह जीव के प्रति परमात्मा का प्रेम होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । जिसके फल स्वरूप यह जीव नूतन शरीर प्राप्त करके नई चेतना, नई शक्ति पाकर पिछले शरीर के अधुरे कर्मों को पुरा कर पाता है ।

■■■

धर्म कर्म भी बन्धन रूप

मन का निग्रह करने के पहले तुम जो कुछ दान, स्वधर्म, यज्ञ, तप, तीर्थ, यम–नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार व्रतादि करलों परन्तु यह सभी कर्तापन के अभिमान को ही बढ़ाने वाले होने से बन्धन रूप ही है ।

मन को निष्काम भाव में परिणित किये बिना यम–नियम, दान, योग, यज्ञादि कर्म अथवा सर्वस्व त्याग कर डालो लेकिन मन में प्रकट या सूक्ष्म अहंकार जाग्रत हो जाता है कि मेरे समान कोई इतना बड़ा दान कर्ता अभी तक नहीं हुआ । मैं सब से बड़ा दानी हूँ इस प्रकार मन अत्यधिक बलिष्ठ हो जाता है । मन में निष्काम भाव जाग्रत हुए बिना कोई भी स्वधर्म, स्व–आश्रम का पालन करने से मन का अहंकार बढ़ता है कि मेरा कर्म सर्वश्रेष्ठ है । न्युज पेपर में नाम छपा है टीवी पर दिखाया है, मुझे राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ है उसे हर जगह प्रदर्शित करता है अपने नाम के आगे पीछे शिक्षा पद की डिग्रियों के साथ समाज से प्राप्त उपाधि, सम्मान सूचक चिह्न भी जोड़ दिया करते है । महात्मा भी श्री श्री १०८, १००८, अनन्तश्री विभूषित, परमहंस, महामण्डलेश्वर इत्यादि उपाधियों को पाकर उनका मन अधिक हड़काये कुत्ते की तरह गर्विला, घमण्डी हो जाता है ।

कभी मनुष्य कर्म, उपासना को छोड़ वेद शास्त्र को पढ़ने से गहन विषय के गर्व से अन्ध हो पंडिताई का बड़ा घमण्ड करने लगता है ।

कर्मी कहता है मेरा स्वकर्म अति श्रेष्ठ है, मेरे समान पृथ्वी में कोई ऐसा शुद्ध आचारी नहीं है । मैं स्वतः अन्न धोकर सुखा कर स्वयं पीस कर भोजन बनाकर खाता हूँ । २५ साल से किसी स्त्री के हाथ का भोजन नहीं किया, किसी स्त्री को पैर नहीं छूने दिया । पैसे को तो छूता नहीं, मेरे शिष्य पैसे को संभालते हैं । खर्च का उनसे मैं ठिक हिसाब ले लेता हूँ, मेरे शिष्य समझदार है, एक पैसे का फर्क नहीं मिलता है । मेरे सामने रूपये गिनवाकर रखता हूँ । चैक पर मेरे से पूछकर साइन कराकर रूपया निकाल लेते हैं । फिजुल खर्चा करना मुझे बिलकुल पसन्द नहीं ।

मैं ऐसे वैसे घर का व्यक्ति नहीं हूँ, करोड़ो की सम्पत्ति पर लात मारकर आया हूँ । मैं पंजाव का गवर्नर रहचुका हूँ । मेरे दो लड़के आमेरिका में है । इस प्रकार स्वधर्मादिक के अभिमानी का मन गृहस्थ संसारी लोगों से भी अधिक अहंकारी एवं बन्धन रूप होता है ।

■■■

कर्म साधन कब तक करें ?

दान, यज्ञ, व्रत होमादि कर्म सकामता के कारण जन्म–मरण का हेतु हो जाते हैं, इसलिये बन्धन रूप है । लोक परलोक का फल देने वाले हैं । निष्काम कर्म करने से आत्मप्राप्ति के मार्ग में सरलता हो जाती है । वही मन भवसागर के पार होने में सहायक नाविक बन जाता है । यह मनको पहले देहाध्यास से मुक्त करना होगा क्योंकि जन्मों जन्मों का अध्यास मनमें छिपा पड़ा है इसी का नाम मनोनिग्रह है अथवा मन का नियमन कहलाता है । इसी का नाम चित्तवृत्ति निरोध भी है ।

निष्काम कर्म करने वाला साधक भी परमात्मा से प्रार्थना करे कि मेरे चित्त की शुद्धि हो । ऐसे जिज्ञासु के उपर वहाँ ईश्वर कृपा अर्थात् सद्‌गुरु कृपा अवश्य होती है (**मोक्ष मूलं गुरु कृपा**), जो साधना की सिद्धि में सहायक है । जो साधक फल का त्याग कर दानादि स्वधर्म का आचरण करता रहता है तो चित्त शुद्धि जरूर होती है, जो प्रभु प्रेम की ओर जाने में उपयोगी होती है ।

जिसका मन शान्त हो चुका है उसे दानादि कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती । जिसका मन स्वाधीन और शान्त हो चुका है उसे अब दानादि कर्म करने की कोई जरूरत नहीं रहती । जिसका मन अपने आत्म स्वरूप में ठहर गया, वह भव सागर से पार हो गया ।

जैसे नदी पार पहुँच जाने वाले को अब नदी तैरने की या नाव में बैठने की क्या जरूरत ?

सन्ध्याकाल पर दीपक जलाना पड़ता है किन्तु सूर्योदय होने पर जलाने की आवश्यकता नहीं रहती । उसी तरह मन में जब निर्विकल्पता उदय हो गई तब उसे करोड़ों साधन में से किसी एक साधन को करने की जरूरत नहीं पड़ती है ।

इसी तरह जिसका मन आत्मभाव में समाधिस्थ शान्त हो चुका है, उस ज्ञानी पुरुष को नाना प्रकार के दानादि कर्म साधन करने की आवश्यकता नहीं रहती है ।

अनित्य कर्मों के द्वारा नित्य वस्तु आत्मा की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती । साधन साध्य प्रत्येक वस्तु लोक नाशवान ही होते हैं । ज्ञानवान के कर्म अकर्म सज्ञा में आते हैं । ज्ञानी के कर्म निर्बीज होते हैं । ज्ञानी को यदि युद्ध में लड़ना पड़े व उसके द्वारा असंख्यों की हत्या करना पड़े तो भी वह उन कर्मों का फल भोगने का अधिकारी नहीं होता है । ज्ञानाग्नि द्वारा उसके सभी कर्म दग्ध हो जाते हैं ।

सोऽहम्

जपो में सबसे श्रेष्ठ सोहम् अजपा जप है । प्रत्येक श्वाँस भीतर जाते समय 'सो' तथा बाहर जाते समय 'हम्' का सुमिरन चलता रहता है । **हंसः सोऽहम्** अर्थात् (**अहं सः सः अहं**) 'मैं वह हूँ,' 'वह मैं हूँ' का भावना करते हुए श्वाँस छोड़ते समय हंसः का उल्टा सोऽहम् ध्यान मन में करते हैं । 'वह मैं हूँ' ऐसी मन में भावना की आदत डालना चाहिये ।

इस तरह चोबीस घंटे में २१६00 अजपा जाप प्रत्येक मनुष्य के श्वाँस-प्रश्वाँस से अनजान अवस्था में होता रहता है ।

बाबरा भूत

मन को वशीभूत करने की सबसे सरल युक्ति

किसी समय में एक वीर विक्रम राजा हुआ था उसने अनेकों वीरों को हराया था । उसे एकबार बाबरा भूत से मुलाकात हुई उसने वीर विक्रम को कहा – हे नरमणि ! आज से मैं आपका दास होता हूँ किन्तु मेरी एक शर्त है कि आप मुझे सब समय काम देंगे मैं एक क्षण भी खाली रहना नहीं चाहूँगा यदि मुझे काम नहीं दे सकोगे तो मैं तुमको खा जाउँगा । मुझे खाने की अपेक्षा काम बहुत प्रिय है, भूखा में आठ दिन भी रह जाऊँ काम में लगा रहूँगा किन्तु खाली होते ही मुझे असहनीय भूख सताने लगती है फिर मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा ।

विक्रम राजा ने कहा ठीक है तेरी शर्त मन्जूर है तू मेरे गुलाम मैं तेरा मालिक । इतना कहते ही बाबरा ने कहा हे मेरे मालिक ! बोल क्या काम है तेरा ? विक्रम राजा ने उस बाबरा भूत को अपने राज्य के बड़े से बड़े कार्य जो हजारों मनुष्यों से १०० वर्षों में भी नहीं हो पाते उसे करने का आदेश दिया, उसने वह सब क्षण में पूरा कर विक्रम के सम्मुख हाजिर हो गया व कहा मेरे मालिक आपके कहे अनुसार सब कार्य मैं कर चुका और काम बताओ ?

विक्रम ने कहा ठीक है मेरे आंगन मे एक ४० फिट स्तम्भ गाढ़ कर उसपर चढ–उतर करता रह । जब मुझे तेरी जरूरत होगी तुझे

आवाज दूँगा । काम करने के बाद फिर उस खम्भे पर चढ उतर करते रहना यही तेरे लिये सब समय काम रहेगा । यदि मैंने बुलाया और आने मे देर की तो मैं भी तेरी गर्दन काट दूँगा ।

बाबरा भूत राजा विक्रम की शर्त सुन चरणों में गिर गया व कहा आज तक मुझे किसी ने नहीं हराया इस दुनियाँ में आप ही ऐसे एक व्यक्ति हैं जिसको ऐसी युक्ति सूझी है ।

हे भक्तों ! जैसे राजा विक्रम ने बाबरा भूत को अपने वश में किया इसी तरह आप भी अपने मन भूत को वश में करने के अनेको उपाय कर चुके किन्तु यह मन भूत आपके वश में नहीं हुआ ।

अब आप इस मन भूत को श्वाँस स्तम्भ पर चढ उतर का आदेश दे कि श्वाँस के अन्दर आते समय क्या धुन हो रही है, बाहर आते समय क्या गूंज हो रही है इस की सुनता रहे । यह मन भूत तभी से गुरु आज्ञा मान सोऽहम् की धुन को सुनने में लगा हुआ है । हंसः सोऽहम् (अहं सः सः अहम्) अर्थात् मैं वह हूँ, वह मैं हूँ इस स्वरूप स्मृति को श्वाँस उच्छ्वास में मन मनन करता रहे । इस प्रकार अभ्यास मन द्वारा कराते रहो तो अजपा जाप, अनाहत श्रवण होता रहेगा । जिसका तात्पर्य है कि मैं वह हूँ, यह मैं नहीं । जिसकी जन्म-मृत्यु नहीं वह मैं हूँ, यह जन्म-मृत्यु रूप देह मैं नहीं हूँ।

आत्मा अजन्मा अविनाशी है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब रूप ये जीव देह के साथ मिलकर देह को अपना रूप समझ बैठा और जीव तब से अपने को जन्म-मरण धर्मी मानने लगा । जबकि आत्मा विदेही निराकार जरा मृत्यु से रहित है । अज्ञानता से विदेही को देही व अजन्मा अविनाशी को जन्म-मरण, अकर्ता-अभोक्ता को कर्ता-भोक्ता तथा नित्यमुक्त को बद्धता की भ्रम हो गया ।

जब जीव सद्गुरु की शरण में अपना तन मन धन समर्पण करता है तब वे जीव को पुनः उसके वास्तविक रूप का बोध कराते हैं कि हे

जीव ! तू यह नाम, रूप, जाति वाला देह नहीं है । तू अपने को किसी की सन्तान किसी का पिता–माता, पति–पत्नी मत मान । यह सब तेरे सम्बन्ध नहीं है, तू देह नहीं है तू देही है । तू असंग है । तू न ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र जाति वाला है न तू ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, संन्यासी, आश्रमी है । न तू स्त्री, पुरुष, अन्धा, कुरुप, दुर्बल–मोटा,ज्ञानी–अज्ञानी है । तू तो द्रष्टा साक्षी चैतन्य आत्मा है । देही होकर तूने देह के धर्मों को, मन, प्राण का द्रष्टा होकर भी, मन के धर्मों को, प्राण के धर्मों को अपना मान व्यर्थ दुःखी हो रहा है ।

अतः हे जीव तू निश्चय कर

नाहं देहो जन्म–मृत्यु कुतो मे
नाहं प्राणः क्षुधा पिपासा कुतो मे
नाहं चेतः शोक मोहौ कुतो मे
नाहं कर्ता बन्ध मोक्षौ कुतो मे
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्

मैं देह नहीं जन्म–मृत्यु मुझ में कहाँ ? मैं प्राण नहीं तो भूख–प्यास मुझमें कहाँ ? मैं मन नहीं तो शोक–मोह मुझे कहाँ ? मैं कर्ता जीव नहीं तो बन्ध–मोक्ष मुझ में कहाँ ? मैं तो कल्याण स्वरूप द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

■■■

जित देखूं तित लाल

हमें दुःख की निवृत्ति करना है । आनन्द की प्राप्ति नहीं करना है, क्योंकि आनन्द ब्रह्म अखण्ड एवं सर्व व्यापक है । प्राप्त होने वाला पदार्थ परिच्छिन्न तथा एकदेशीय होने से अनित्य होता है। आनन्द हम सभी का सहज स्वभाव है । स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता । हमें उस नित्यानन्द को निरावरण करना है । जैसे आकाश में सूर्य सदैव है किन्तु बादल, कुहरा या चन्द्र के कारण वह दिखाई नहीं देता है । केवल कुछ करना है तो वह हमें दुःख निवारण के लिये करना है ।

आनन्द हमारा स्वभाव न होता तो सुषुप्ति में बिना प्रयास, बिना पदार्थ, बिना व्यक्ति के सभीको आनन्दानुभूति कभी न होती । सभी नींद से उठ यह कहते हैं मैं सुखसे सोया और कुछ भी पता न चला ।

सुषुप्ति से ज्ञान होता है कि वहाँ तुम देहवान् नहीं थे इसीलिये कोई कष्ट नहीं था प्रत्युत केवल तुम आनन्द स्वरूप थे । वहाँ तुम अपने आत्मा में ही डूबते हो । किन्तु सभी को जाग्रत अवस्था में दुःख की अनुभूति होती है उसका कारण स्पष्ट यह है कि जाग्रत अवस्था में हम देहवान हो जाते है एवं पदार्थ पाकर, व्यक्ति पाकर हम आनन्दित होते हैं लेकिन कोई स्थान, कोई व्यक्ति, कोई पदार्थ हमें आनन्द प्रदान नहीं करता है । परन्तु यह हम सभी का भ्रम है । जैसे कुत्ता हड्डी का टुकड़ा चबा–चबा कर अपने मुंह में चमडी काट लेता है जिससे उसका मुंह में

रक्तस्राव होता है उसे ही वह चाटता है और हड्डी से रस मिल रहा है ऐसी उसे भ्रान्ति होती है ।

ठीक इसी प्रकार जाग्रत में जो आनन्द अनुभव में आता है, वह मनके एकाग्रता से आत्मा का ही प्रतिविम्बित आनन्द मिलता है । वस्तु या व्यक्ति का नहीं । यदि वस्तु या व्यक्ति का आनन्द होता तो सब समय उसी वस्तु या व्यक्ति से सदा आनन्द मिलते रहना चाहिये था लेकिन देखा जाता है कि उसे छोड़ दूसरी वस्तु की इच्छा होती है और अन्त में गहरी नींद की कामना करता है । अस्तु मिलने वाला सुख मेरा ही प्रतिविम्बित आनन्द है ।

आकांक्षा से जब तक तुम भरे रहोगे कि ऐसा चाहिये, ऐसा हो तब तक तुम बन्धन से मुक्त नहीं हो सकोगे । मुक्ति का आकांक्षा भी बन्धन है । चाह किसी भी प्रकार की क्यों न हो वह बन्धन रूप है । जिस क्षण तुम्हारे मन में कुछ भी चाह नहीं रहती उस समय तुम परमात्मा हो जाते हो । तुम अपने मन को विषयों से खाली करो ताकि परमात्मा प्रकट हो सके । आकांक्षा न करना ही शून्य हो जाना है ।

तुम्हारे हाथ में न प्रारम्भ है, न समाप्ति । श्वाँस चल रही है, चल रही है रूक जायगी तब तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे । न तुम्हारे करने से वह चलती है और न वह तुम्हारे कहने से रुकती है तुम रोकना चाहो हठ योग करके तो भी वह ज्यादा देर नहीं रुक सकेगी तुम्हारे बिना चाहे भी आखिर चलने ही देना पड़ेगा । मौत द्वार पर आयगी तो तुम एक श्वाँस भी नहीं अधिक ले सकोगे । श्वाँस लेना यदि तुम्हारे बस की बात होती तो मृत्यु कभी नहीं घटती । पर सबके न चाहने पर भी मृत्यु स्वीकार करना ही पड़ता है ।

हे आत्मन् ! तुम कर्ता नहीं हो । क्योंकि न जन्म तुम्हारे हाथ में है कि किस जाति में, किस प्रान्त में, किस गाँव में, किस घर में, किस

दिन, किस समय, किस मां के गर्भ से, किस वर्ण के, किस लिंग के रूप में आऊँगा । तुम केवल द्रष्टा साक्षी आत्मा ही हो ।

जिसका मन के साथ तादात्म्य टूट गया फिर उसके लिये कोई संसार नहीं है । साक्षी का मन के साथ तादात्म्य होना ही संसार है । सुषुप्ति में साक्षी के साथ मन का सम्बन्ध टूट जाता है तब न संसार है, न साक्षी । साक्षी की उपस्थिति मन के सम्मुख ही रहती है जहाँ अन्तःकरण नहीं वहाँ साक्षी भी नहीं, केवल चैतन्य रहता है । जिसको साक्षी भाव उपलब्ध हो गया उसके लिये अब कुछ साध्य नहीं है, क्योंकि सभी साधन की सीमा साक्षी भावकी उपलब्धि है। साक्षी भाव को प्राप्त कर लिया तो सभी साधनों का अन्तिम फल प्राप्त हो गया । अब कुछ पाना, कहीं जाना, कुछ करना, कुछ जानना शेष नहीं है ।

वह ज्ञानी धन्य है जो साक्षी हो चुका है । जो मनके पार मन का द्रष्टा हो चुका है । जो अन्तःकरण की वृत्तियों के पार हो चुका है । जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से अपना कोई तादात्म्य नहीं करता है। जो देह संघात् का प्रकाशक हो गया है । वृत्तियों में ज्ञानी कभी नहीं उलझता है । ज्ञानी वृत्तियों को मिथ्या जानता है । क्योंकि वृत्तियाँ सूक्ष्म शरीर का अंग है और सूक्ष्म शरीर मिथ्या व जड़ दृश्य है तब उसकी वृत्ति सत्य कैसे हो सकेगी ।

आवागमन से छूटने का एक ही उपाय है कि जो तुम्हारे भीतर चैतन्य आत्म तत्त्व है, जिसका न कभी जन्म हुआ है, न कभी मृत्यु होती है, जिसे पाने के लिये जन्मों से कर्मी, भक्त, योगी, ज्ञानी खोज में लगे हुए है, किन्तु सफलता किसी एक को नहीं मिल पाती है । उसका कारण अधिकांश खोज ही गलत दिशा में हो रही है । है भीतर उधर पीठ किये हुए हैं एवं बाहर अदृश्य एवं अव्यक्त रूप में है फिर भी उस ओर दौड़ कर रहे हैं । तुम्हारे अन्दर जो जन्म से मृत्यु तक एक भीतर बैठा सब क्रियाओं को, संकल्पों को देख रहा है, जो किसी अवस्था में बदलता नहीं

वही तुम्हारा होना है । इस शरीर के पीछे मन है मन के पीछे जो है वही साक्षी तुम्हारा स्वभाव है । तुममें व उसमें दूरी नहीं है । उसे पाने हेतु कुछ करना आवश्यक नहीं रहता ।

परमात्मा के पास जाने के लिये किसी साधन, समय, योग्यता की जरूरत नहीं है क्योंकि उसी में ही तो तुम सब समय रहते हो, उसी ने ही तो तुम्हें बचपन से आज तक सम्भाल रखा है । तुम्हारा होना, जीवित रहना, क्रियाएँ करना तथा तुम्हार प्रतिरात्रि सोकर उठ आना यह उसके होने का ही प्रमाण है । उसके बिना तो तुम कुछ कर ही नहीं सकते । अच्छे–बुरे जैसे भी कर्म करते हो उनके लिये वहीं से शक्ति प्राप्त करते हो । परमात्मा के बिना एक कदम, एक श्वाँस, एक संकल्प भी नहीं हो सकता । तुम्हारी मूढ़ता तो देखो कि अन्दर न देख उसे बाहर जड़, मूर्ति, मन्दिर, तीर्थ में या ध्यान–समाधि में खोज रहे हो । कीर्तन, भजन तथा जप द्वारा उसे पुकार रहे हो ? जो बाहर दूर होता है हमसे भिन्न होता है उसे पाने बुलाने के लिये साधन चाहिये किन्तु परमात्मा तो भिन्न नहीं, हमसे बाहर नहीं है । हम ही परमात्मा है ।

साक्षी का मतलब कोई चुनाव नहीं केवल देखते रहो, जो हो रहा है । यह निर्णय न लो कि क्या–ठीक क्या गलत । मनसे कहदो तेरा तू जान । तेरे साथ मेरी कोई सांझे दारी नहीं तेरा किया तू ही भोगना । जहाँ तुझे जाना है जा, जो तुझे करना है करले । देखते देखते मन अमन हो जाता है ।

मन पर ध्यान देने से ज्यादा उपद्रव करता है उस पर ध्यान न दो, रोक न लगाओ तो अपने आप शान्त हो जाएगा । जैसे छोटे बच्चे गिरते है तब उन्हें कोई देखता हो तो जोर से रोते हैं । यदि कोई न देखे तो चुप चाप इधर–उधर देख धूल झाड़ उठ चल देते हैं ।

जिसे तुम मौत के बाद नहीं ले जा सकोगे वह तुम नहीं हो । यह पशु, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दु, ब्रह्मचारी

संन्यासी आदि कोई भी साथ जाने वाला नहीं है, सब यही जलकर भस्म हो जावेगा । जिसे तुम जन्म से साथ लाये हो और मृत्यु पर भी साथ ले जा सकोगे, वही तुम हो ।

आत्मा पाने की बात ही गलत है । यदि तुम चेतन हो तो बात खतम हो गई, तुमही हो । यदि तुम जड़ हो तो उसे कैसे प्राप्त कर सकोगे । चेतन के द्वारा ही किसी अचेतन को प्राप्त किया जाता है। दो चेतन, दो आत्मा तो है नहीं जो एक पाने की चेष्टा करे व दूसरा उसे प्राप्त कर सके । आत्मा नित्य एवं सर्व व्यापक है तब वह तुम्हारे रूप में भी अवश्य हैं । फिर उसे पाने के लिये कष्ट उठाने की भी क्या जरूरत ? तुम स्वयं आत्मा हो । साधन करने से पूर्व विद्यमान ही हो । जो साधन से प्राप्त करोगे वह अनात्म पदार्थ तो नष्ट होने ही वाला है फिर उसे पाना भी क्या । शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा मन को अपना रूप मानते हो यही तुम्हारी भूल है। इसलिये देह, प्राण, इन्द्रिय, मनादि से मैं भाव हटाना बहुत जरूरी है । मैंने अभी तक आत्मा को प्राप्त नहीं किया यह सोचना ही पाप है । मैं साधन कर आत्मा को प्राप्त कर लूँगा इस प्रकार सोचना ही प्राप्त आत्मा में अप्राप्ति का भ्रम करा रहा है ।

आत्मा की प्राप्ति के लिये केवल निश्चय होना आवश्यक है इससे सरल, सहज और क्या हो सकेगा ?

साधन करने वाला कौन है ? 'मैं हूँ' यह मैं हूँ कहने वाला अनात्मा है या आत्मा ? अनात्मा अर्थात् मृत पुरुष तो मैं हूँ ऐसा नहीं कह सकता तब आप मृत है या अमृत ? अमृत ! तो फिर अमृत आत्मा तुम सिद्ध ही हो फिर साधन किसके लिये ? मैं आत्मा हूँ यह जान लेना ही परम साधना है । जो सब समय सबको आत्मा रूप देखता है उसके लिये कोई साधन करने की जरूरत नहीं है । एकदेशीय जड़ वस्तु ही साधन द्वारा प्राप्त की जाती है । साधना आवरण दोष को, देहात्म बुद्धि के भ्रम को दूर करने के लिये होती है, आत्म प्राप्ति के लिये नहीं ।

साक्षात्कार का अर्थ ऐसा न समझे कि कोई अदृश्य लोक से ब्रह्म उतर कर प्रकट हो जावेगा । आत्मा जो तुम हो उसे पाने का विचार ही भ्रम है । आत्मा सर्व रूप है, सर्वत्र है । फिर तुम उससे भिन्न कहाँ ? आत्मा को पाने की बात पूछना तो ऐसा अज्ञान है जैसे कोई घर मैं बैठा व्यक्ति घर का रास्ता पूछे कि मेरे घर का रास्ता बतावें मैं किस ओर से जाऊँ कि शिघ्र घर पहुँच जाऊँ ?

सिनेमा पर्दे पर आग लगाने के, वर्षा होने के, बाढ़ में नगर मनुष्य पशु बहने का, युद्ध में लोगों के रक्त बहने का, गोलियाँ चलने आदि की अनेक प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ते है परन्तु पर्दे पर किञ्चित भी किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता । पर्दा ज्यों का त्यों असंग ही बना रहता है ।

इसी प्रकार यह जगत् भी चलचित्र की तरह आने वाला है एवं पर्दे की तरह आत्मा अचल है । पर्दा सत्य है चित्र तो भ्रान्ति मात्र है इसी तरह आत्मा सत्य है एवं अधिष्ठान है । यह जगत् मिथ्या एवं अध्यस्थ मात्र है । जैसे रस्सी के स्थान पर सर्प का भासमान होना असत्य है ।

क्या मैं आत्मा से भिन्न कभी था ? कभी हो सकूँगा ? तो फिर आत्म साक्षात्कार मैंने किया है ? पूछना ना समझी ही है ।

ज्ञानी के बाह्य रूप एवं क्रिया को देख अश्रद्धा नहीं करना चाहिये । जीवन्मुक्त पुरुष प्रारब्धानुसार अज्ञान से आवृत प्रतीत होता है । तथापि वह आकाश की तरह सर्वदा असंग निर्मल है । जो आकाश वायु वश कभी घनावृत होता है और कभी बादलों से मुक्त और स्वच्छ प्रतीत होता है इसी प्रकार ज्ञानी सर्वदा आत्म भाव में ही स्थित रहता है ।

ज्ञानी के जीवन में कामोपभोग दिखाई पड़े तो भी यही जानना चाहिये कि इस तरह वह आत्मा के उस सहज शाश्वत आनन्द में तल्लीन है । उसने अपनी मूल प्रकृति एवं स्वरूप के प्राप्त्यार्थ स्वयं को जीव और

ब्रह्म के रूप में विभाजित कर लिया है तथा अब उसके पुनर्मिलन का आनन्द प्राप्त कर रहा है ।

ज्ञानी के बाह्य आचरण को देख विमूढ़ लोग उसकी निंदा व तिरस्कार करते हैं । कृष्ण ब्रह्मचारी तथा दुर्वासा सब खाकर उपवासी बने रहने की घटना पुराण प्रसिद्ध है । जरा सोचिये तो १६००० गोपियों के स्वामी, अष्ट पटरानियों के पति और ब्रह्मचारी, ऐसा है जीवन्मुक्तो का रहस्य ।

परमात्मा को मत पढ़ाओ

ईश्वर के प्रति स्वयं की इच्छा प्रकट करना कि आप उसका कल्याण कीजिये तो ईश्वर को अल्पज्ञ समझने जैसी मूढ़ता ही है । समर्पण के स्थान पर ईश्वर को आदेश देना । कब, क्या व किस समय उसे जो कुछ करना है वही हम सब के लिये कल्याणकारी ही होगा । सब उस पर छोड़ दो और अपने को चिन्ता से मुक्त करलो । लोग कहते है कि हे प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो । तो तुम्हें यह कहने की भी क्या जरूरत ? जब तुम असमर्थ हो तब तुम अन्य की सहायता कैसे कर सकोगे ?

क्या तुम्हारे सर्जक को तुम्हारी आवश्यकता का खयाल नहीं जो तुम प्रार्थना के रूप में उसे उसके कर्तव्यता का होश करा रहे हो । हे भक्तों तुम चुप रहो उसे जो करना है, वह तो करेगा ही उसे रोकने वाला कौन है ? तुम्हारे आशिर्वाद की परमात्मा को जरूरत नहीं है । क्या जब तुम कहोगे प्रभू ! तेरी इच्छा पूर्ण हो तब वह अपनी पूर्ण कर सकेगा ? और यदि तुम ऐसा न कहोगे तो क्या परमात्मा को जो करना है वह नहीं कर सकेगा ? क्या ईश्वर को अपने कर्तव्य अकर्तव्यका बोध नहीं है जो आप प्रार्थना के रूप में उसे सजग कर रहे हैं ।

परिक्षित निर्जीव नव प्रसूत शिशु था । आर्त स्वर में माता ने कृष्ण को पुकारा कि मेरे बच्चे में प्राण प्रदान कर दें। ऋषिगण तथा शुकदेव

भी उस घटना के समय उपस्थित थे । कृष्ण ने कहा यदि कोई यहाँ ब्रह्मचारी है तो वह इस मृत शिशु को अपना पवित्र स्पर्श कर दे तो यह शिशु में चेतना प्रकट हो जायगी । परन्तु ऋषियों व शुकदेव में से कोई भी उस शिशु को स्पर्श करने व अपने को ब्रह्मचारी प्रमाणित करने के लिये प्रस्तुत नहीं हुए । तब श्रीकृष्ण ने कहा यदि मैं नित्य ब्रह्मचारी हूँ तो यह शिशु में श्वाँस क्रिया प्रारम्भ हो ऐसा वह बच्चे को स्पर्श किया तत्काल ही यह बच्चा रोने व हंसने लगा । वही बालक भागवत प्रसिद्ध राजा परिक्षित नामसे प्रसिद्ध हुए ।

■■■

कर्म का कर्ता कौन ?

१. अधिष्ठान अर्थात् शरीर, २. कर्ता अहंकार, ३. करण अर्थात् चौदह त्रिपुटियाँ, ४. प्राण, ५. ईश्वर । यह पाचों मिलकर कोई भी काम करते हैं २0% प्रत्येक की शक्ति लगती है, तब १00% कार्य पूरा होता है । यदि २0% कर्तापन अहंकार खींच लिया जाय तो आप कर्ता न रहकर साक्षी रह गये काम पूर्ण होने न होने को जानने वाले । आप अपनी २0% साझेदारी समाप्त करले यही होगा पूर्ण समर्पण । रह जावेंगे अस्ति भाति प्रिय सच्चिदानन्द ब्रह्म । कर्म के देखने वाले ।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठिति ।१८/६

अधिष्ठानं तथा कर्ता करण च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथव्येष्टा दैवं चै वात्र पञ्च मम ।।१८/१४

तुरीय कौन है ? यह जानने के लिये आप क्यों आतुर है ? यह तो तुम ही हो जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का आधार, अधिष्ठान है । यह कोई तीन से भिन्न चतुर्थ प्राप्त करने जैसी अवस्था नहीं है । तुरीय एक परदा रूप जानो जिस पर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएँ अपना–अपना गा नाचकर चली जाती है, अतः यह तीनों मिथ्या है । इन तीनों की आधार शिला तुरीय, तीनों की साक्षी आत्मा तुम सत्य हो ।

अभ्यास करने को इसलिये कहा जाता है कि अज्ञान भ्रान्ति रूप देहाध्यास का निवृत्ति हो जाय । साक्षात्कार हेतु अभ्यास की जरूरत

नहीं । यदि अध्यास नहीं है देह संघात के प्रति, मैं–मेरा भाव नहीं है तो फिर तुम साक्षात् हो ही । तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई साक्षात्कार असाक्षात्कार अवस्था नहीं है । रोगी के लिये औषधि कर्तव्य है । स्वस्थ व्यक्ति के लिये औषधि कर्तव्य नहीं है ।

गुरु किसी को आत्मसाक्षात्कार नहीं कराता है । आत्मा तो नित्य है और वह तुम हो । गुरु उन बाधाओं को दूर करता है जो उसे आत्म साक्षात्कार में रूकावट करती है ।

शिष्य व गुरु का रिश्ता हार्दिक है रागात्मिक है, जैसे प्रेमी व प्रेमिका के रिश्ते बल्कि उससे भी पार । जब सद्‌गुरु तुम्हारा हाथ पकड़ता है तो ऐसा समझना कि परमात्मा ने ही तुम्हारा हाथ पकड़ा है । जब तक तुम अपना सर्वस्व लुटाने को उत्सुक न हो जाओ, सब कुछ देकर भी कुछ नहीं दे पाया ऐसा मनो भाव न हो जावे तब तक जानना हमारा सद्‌गुरु से अभी हार्दिक सम्बन्ध नहीं जुड़ा है । यहाँ कृपणता से कुछ काम नहीं बनेगा । अपनी हस्ती को मिटाना ही होगा, नदी मिटकर ही सागर रूप होती है । गुरु व्यक्ति नहीं है अव्यक्ति है । वह परमात्मा का अनुभव करने में झरोखा है । उसके पास बैठ तुम्हें परमात्मा की झलक मिल जाती है । समस्त सन्देह दूर हो जाते हैं, मन निर्मल शांत हो जाता है । उसके पास जाकर तुम्हें तुम्हारे असली स्वरूप की पहचान हो जाती है । नकली चेहरा उतार कर तुम फेंक देते हो ।

परमात्मा को पूर्ण कहा जाता है, इस बात को वेद पुराणादि व सभी संत कहते है । अतः तुम उस पूर्ण परमात्मा से पृथक नहीं हो । यदि तुम अपने को पूर्ण से पृथक् मानते हो तो फिर परमात्मा अखण्ड नहीं हो सकेगा । परमात्मा तुम्हारे को लेकर ही पूर्ण हो सकेगा । तुम्हारे बिना वह खण्डित ही रहेगा ।

मिठाईयाँ अनेक नाम, आकार, स्वादवाली है । सबको अपनी पसन्द की मिठाई अच्छी लगती है, दूसरी मिठाई को वह पसन्द नहीं

करता किन्तु समस्त मिठाईयों में मधुरता एक चीनी की है, वह न हो तो फिर अपनी पसन्द की मिठाईयाँ भी नीरस लगेगी ।

इसी तरह पदार्थों के नाम, रूप भिन्न है सबकी अपनी अपनी पसन्द की वस्तु ही प्रिय लगती है किन्तु समस्त नाम–रूप का आधार वस्तु तो अस्ति, भाति, प्रिय एक ब्रह्म ही है । यदि वह आधार न हो तो यह अध्यस्त पदार्थ प्रतीति शून्य हो जावेगा । जैसे चीनी से ही बने खिलौने आकृति से चीनी निकाल ली जावे तो फिर व देखने मात्र भी नहीं रहेंगे । अतः नाम रूप में मोहित होकर नाम रूप के आधार स्वयं ब्रह्म को मत भूल जाना । जैसे मिठाईयों में चीनी ही सार वस्तु है ।

कर्म काण्डी लोगों को करके पाने की बात में श्रद्धा होती है वह अष्टांग योग की साधना में रूचि करते हैं । यम, नियम, प्राणायाम में उनकी श्रद्धा भक्ति रहती है, किन्तु अष्टावक्र की बात में उनकी रूचि नहीं देखी जाती । क्योंकि अष्टावक्र कहते हैं एक बार भली प्रकार से श्रवण करने से ही हो जावेगा । परमात्मा तुम्हारा नित्य प्राप्त स्वभाव है । एक क्षण की भी प्रतिक्षा करने की जरूरत नहीं । लेकिन अहंकारी को कठिन में रस आता है । अहंकार को पोषण करके पाने में मिलता है । गौरी–शंकर, चन्द्र, मंगल पर पहुँचने में रस है ।

जहाँ तुम हो, जैसे तुम हो परमात्मा वहाँ ही वैसा ही है । परमात्मा से ज्यादा सरल साधारण कौन हो सकेगा ? कोई नहीं । वह पशु में पशु जैसा । पक्षी में पक्षी जैसा, पौधे पुष्प फलों में पौधे, पुष्प, फल जैसा । बच्चों में बच्चे जैसा । क्योंकि परमात्मा सर्व है । तुम जानों या न जानो, परमात्मा तुम्हारे अन्दर मौजूद है । जो मौजूद ही है फिर उसे पाने के लिये किसी प्रकार की तैयारी करने की क्या जरुरत ?

भोजन का थाल सम्मुख है फिर बाजार में खोजने या साधन सामग्री बटोरने, पाक शास्त्रों में विधि खोजने पागलपन ही तो है । परमात्मा

श्रवण मात्र से मिला हुआ मालुम हो जाता है । इस वेद सिद्धान्त पर तुम्हें विश्वास नहीं है इसीलिये साधन द्वारा पाने की आशा करते हो ।

साधन द्वारा वही पदार्थ प्राप्त होता है जो पदार्थ परिच्छिन्न एकदेशीय एवं जड़ रूप है । परमात्मा पहले से ही प्राप्त है, इसलिये श्रवण मात्र से जानने मात्र से प्राप्त रूप हो जाता है । शान्त होकर बैठकर तो देखो । जहाँ खड़े हो वहीं परमात्मा है । जिसे तुम खोज रहे हो वही तुम हो । परमात्मा को अन्य मानने से बड़ा पाप विश्व में किसी क्रिया द्वारा उत्पन्न नहीं होता ।

वृक्ष अगर जड़ को खोजे कि मेरी जड़ किस जंगल में होगी ? तो यह वृक्ष की मूढ़ता है । बिना जड़ के वृक्ष का जीवन ही नहीं हो सकता । बिना जड़ के वृक्ष खड़ा ही कैसे रह सकेगा ? वृक्ष का होना जड़ होने का प्रमाण है । जड़ों से सम्बन्ध टूट जाय तो वृक्ष गिर पड़े । इसी प्रकार जीव का आधार परमात्मा है । परमात्मा के बिना जीव की प्रतीति हो नहीं सकती । जीव का होना परमात्मा के होने की खबर है ।

अहं विचार के मूल की खोज कीजिये । इस अहं विचार के कारण ही विश्व का अस्तित्व है । यदि यह अहं विचार समाप्त हो जाता है तो दुःख की भी समाप्ति हो जाती है । यह अहं विचार उसके मूल उद्‌गम स्थान की तलाश करने से नष्ट होगा । तब आप जो है वह पूर्ण सत्ता रह जायगी । वहीं आप ठहर जाय । देखिये संशय किसे होते है, उसके मूल में बस जाइये । फिर संशय उत्पन्न नहीं होंगे । देहाभिमान मिथ्या अहं है इसे छोड़ना है तो इसके मूल में जाइये वहाँ उस शुद्ध अहं में टिक जाइये । मिथ्या अहं को नष्ट करने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ।

■■■

मैं कौन हूँ ?

विष्णु पुराण में महात्मा ऋभु व निदाघ की कथा है कि ऋषिने अपने शिष्य निदाघ को ब्रह्मज्ञान देकर कहा कि अब तू कर्म उपासना से मन को हटाकर इसी ब्रह्म ज्ञान में दृढ़ रहना । मैं अपने अन्य शिष्यों के पास जा रहा हूँ । परन्तु निदाघ का मन कर्मकाण्ड में फंसा होने से वह राजा शिखरध्वज की तरह दृढ़ नहीं हो पाया व साधन कर परमात्मा को पाने की चेष्टा में लगा रहता था ।

कुछ समय बाद ऋषि अपने शिष्य निदाघ की स्थिति देखने हेतु उसके नगर में पहुँचे । उस समय निदाघ उस नगर के राजा की शोभा यात्रा देखने सड़क पर खड़ा था । ऋषि भी एक ग्रामिण किसान के वेश में उसी के पास खड़े हो गये व पूछा ऐ भाई । यहाँ इतनी भीड़ क्यों लगी है ? निदाघ ने उसको कहा तुझे मालुम नहीं राजा साहब की सवारी निकलने जा रही है । ऋभु ने पूछा कहाँ है राजा साहब ?

निदाघ ने कहा – देखता नहीं वह जो हाथी पर बैठा आ रहा है, वह यहाँ का राजा है । तू क्या पहली बार इस गाँव में आया है जो राजा को नहीं पहचानता । ऋषि ने कहा हाँ भाई ! मैं राजा को नहीं जानता, मुझे यह भी बता दे कि राजा कौन है और हाथी कौनसा है ? निदाघने क्रोध से उसकी तरफ मुंह करके कहा तू इतना मूर्ख है जो राजा व हाथी को नहीं जानता अरे पगले ! यह नीचे जो है वह हाथी है एवं ऊपर जो बैठा हे वह राजा है ।

गुरु ऋभु ने फिर पूछा कि भाई यह ऊपर किधर से व नीचे किधर से देखूँ ? निदाघ ने कहा – आ मैं तुझे बताता हूँ कि उपर किधर से है और निचे किधर से है और निदाघ ने क्रोध में उसकी पीठ पर ठूंसा मारा व कहा थोड़ा नीचे झूक और निदाघ ऊपर बैठ गया, बूढ़े ऋषि की पीठ पर व कहा यह जो मेरे नीचे है वह तू है व तेरे ऊपर जो बैठा है वह मैं हूँ । अब तू समझा कि नीचे वाला हाथी तू है व ऊपर वाला मैं राजा हूँ ।

गुरु ऋभु ने कहा–अभी जो तूने कहा कि मैं जो ऊपर बैठा हूँ व तू नीचे है । तो यह ऊपर तू है व नीचे मैं हूँ यह मैं व तू का भेद भी समझा दे यह मैं व तू का भेद का क्या आधार है ? क्या पहचान है ?

यह मैं व तू की गूढ़ बात सुन निदाघ विचार में डूब गया कि मेरी देह दृष्टि को आत्मा की ओर मोड़नेवाला मेरे गुरु के सिवाय कोई अन्य नहीं हो सकता। निदाघ अपने गुरु की पीठ से उतर चरणों में गिर गया और अपने अपराध के लिये क्षमा मांगने लगा । ऋभु ने कहा तुझे इतने ही ज्ञान की जरूरत थी मैं के सिवाय तू नहीं । मैं के बिना तू की सिद्धि नहीं और तू नहीं तो फिर मैं भी नहीं यह मैं, तू का भेद देह दीवार से हैं । जैसे मकानों का भेद दीवार से, खेतों का भेद मेड़ से है अन्यथा पृथ्वी एक है । इसी प्रकार चैतन्य आत्म तत्त्व एक है, अखण्ड है 'तत्त्वमसि', वह तू है ।

देह के उठने के साथ प्रथम अहं उठता है फिर वह अहं में नाना वृत्तियाँ उठती है समस्त वृत्तियों का मूल अहं वृत्ति है तथा इस अहं वृत्ति का मूल मैं स्वयं आत्मा हूँ। इस आत्मा का 'मैं' रूप में बोध होना ही इस जीवन का परम कर्तव्य है ।

हमारे अन्दर दो प्रकार के अहम् का अस्तित्त्व है । एक अहम् अहंकार के साथ देह संघात् में तादात्म्य करके जाग्रत से स्वप्न तक फैला रहता है जो मन के साथ बदलता है । ज्ञानी–अज्ञानी, दानी–

भिखारी, इमानी–बेइमानी, कामी क्रोधी आदि दूसरा जो गहरी नींद के अनुभव को तथा इन्द्रिय व मन के अभाव के कारण कुछ नहीं जान पाया यह दूसरा अहं, शुद्ध अहं है । इसी शुद्ध अहं की ओर जीव की दृष्टि लाने के लिये सद्गुरु 'तत्त्वमसि' महावाक्य सुनाता है जिसके फल स्वरूप जीव अपने अन्दर उपाधिकृत समस्त मिथ्या अभिमान का त्याग कर अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, सोऽहम् का अनुभव प्रकट करता है । नित्य सिद्ध आत्मा का मैं रूप से बोध ही वास्तविक सिद्धि है ।

मैं हूँ – मैं हूँ, इस प्रकार अहं वृत्ति के मूल को खोजना चाहिये जो आत्मा है उसको ही मैं रूप में जानना चाहिये जो तीनों अवस्था में विद्यमान रहती है ।

व्यवहार काल में जो अहं वृत्ति की उपलब्धि होती है वह अहम् पद का वाच्यार्थ नकली रूप है और जहाँ से इसका उदय होता है एवं जिसमें इस अहं वृत्ति का सुषुप्ति समय लय होता है वह मूल स्वरूप आपका लक्ष्यार्थ है वही आप है । यह उदय–अस्त, बदलती वृत्ति आप नहीं है । वृत्ति के द्वारा आत्मा के असली रूप को नहीं जाना जा सकता इसीलिये इसे वेद नेति–नेति कहकर अहं वृत्ति के लक्ष्यार्थ शुद्ध चैतन्य की ओर इशारा करता है । जब तक अहं वृत्ति–बुद्धि है तब तक जीव, जगत्, ईश्वर इन तीनों की प्रतीति होती है । इसलिये अहंमीति से शून्य स्थिति समस्त निष्ठाओं से उत्तम निष्ठा है । अतः समस्त अहं वृत्तियों का उपसंहार करने पर ही स्वात्मा को मैं रूप में सिद्धि होती है ।

यदि मनुष्य अनात्म विषयक चेतना का त्याग करदे तो शुद्ध चैतन्य शेष रह जाता है और वही नित्य चैतन्यात्मा तुम्हारा स्वरूप है ।

जब हम 'मैं' शब्द का प्रयोग करते हैं तब शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा मन–बुद्धि के साथ करते हैं । जब यह देह संघात से तादात्म्य टूट जाता है और यह तीन शरीर, तीन अवस्था, पंचकोश मैं नहीं हूँ ऐसे

इनको अस्वीकार कर देने पर जो शेष रह जाता है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता वही 'मैं' वास्तविक है ।

सच्चा मैं कभी किसी कर्म करने का अभिमान नहीं करता है बारम्बार बदलने वाला नकली मैं ही मैं खाता हूँ, मैं जाता हूँ, मैं देखता हूँ, मैं सोता हूँ आदि कहता है । यह नकली मैं भी समस्त क्रियाओं के अभिमान को बटोर अपने में जोड़ लेता है । यह नकली मैं मुझ शुद्धात्मा का बुद्धि वृत्ति में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब है ।

जब तक देह के साथ तादात्म्य बना रहेगा तब तक नकली मैं जिन्दा रहेगा । तब तक शोक मोह रहेगा । जब नकली मैं मरता है स्वरूप बोध द्वारा तब शोक, मोह, काम, क्रोध भी समाप्त हो जाते हैं ।

आपका कर्तव्य निश्चल आत्म रूप होकर रहना है अपने विकारी देह भाव को नष्ट कर मौन, शान्त चैतन्य रूप रहना है । ''मैं यह हूँ'', ''मैं यह नहीं हूँ'' मैं वह हूँ ऐसा न बन कर केवल 'मैं हूँ' भाव में रहना है । कुछ ऐसा वैसा नहीं बनना है, आप जैसे हैं वैसे ही बने रहे । आपका वास्तविक स्वरूप केवल होना है, ऐसा वैसा होना या ऐसा-वैसा करना आपका काम नहीं है ।

आत्मा को जानना नहीं है आत्मा होकर रहना है । आत्मा इन्द्रिय से प्राप्त भिन्न विषय की तरह प्राप्तव्य वस्तु नहीं है । बिना दर्पण के आप अपनी आँख को नहीं देख सकते फिर भी मेरे पास आंख नहीं है ऐसा तो कभी नहीं कहते । आप है या नहीं इसके लिये प्रकाश में आने की जरूरत नहीं । 'मैं नहीं हूँ ', 'मैं कहीं खोगया है' ऐसा कह सकोगे क्या ? देखकर मानने की आदत इतनी दृढ होगई है कि आप अपने को भी देखकर मानना चाहते हैं। दुःख दर्द नहीं दिखाई पड़ता है तब भी उसे स्वीकार करते हो, भूख-प्यास को स्वीकार करते हो बस इस दर्द को, भूख प्यास को जो जानता है, वही तो तुम हो । आत्मा को वस्तु रूप नहीं देखा जा सकता ।

परमात्मा अप्रमेय है जगत् प्रमेय है अर्थात् जगत् में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांच प्रमेय वस्तु है और श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, घ्राण, जिह्वा यह पांच प्रमाण के द्वारा पांच प्रमेय जाने जाते हैं, ग्रहण किये जाते है किन्तु आत्मा इन जगत् के पदार्थों की तरह इन्द्रिय प्रमाण से जाना नहीं जाता है । क्योंकि आत्मा को अप्रमेय कहा जाता है फिरभी आप अपने होने को इन्कार नहीं करते, यही अप्रमेय आत्मा तुम हो ।

अपने घर में चलना घर से दूर होना नहीं कहा जाता, इसी प्रकार ज्ञानी का विषय ग्रहण करना द्वैत नहीं होता । जैसे सूर्य व रश्मी, चांद व चांदनी समुद्र व वर्षा कुछ द्वैत नहीं इसी प्रकार ज्ञानी बोलता है पर मौन का भंग नहीं होता है । इस ब्रह्मवेत्ता के द्वारा व्यवहार होने पर भी द्वैत की सिद्धि नहीं होती है । एक वृक्ष में डाल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, होने से भी द्वैत नहीं होता ।

मन आत्मा की रश्मि है । यदि मन के मूल आत्मा को जानलिया तब मन अमन हो जाता है । सत्ता हीन हो जाता है । समस्त बन्धन व प्रपंच संसार इस मन को सत्तावान जानने से ही हैं । मन क्या है ? जब इसका विचार किया जायगा तब मन ही नहीं रहेगा । जैसे लहरे क्या है ? बर्फ क्या है ? तब न लहर रहेगी, न बर्फ रहेगा केवल एक जल सत्ता ही विचार दृष्टि से रह जाता है । इस प्रकार मन रश्मि का विचार करने से आत्मा रूप रह जाता है फिर उससे प्रतीत होने वाला प्रपंच का भी साथ–साथ उपसंहार हो जाता है । स्वरूप स्थिति प्राप्त करने का यह विचारात्मक सरल मार्ग है ।

भेद भावना से की जाने वाली भक्ति से अहंग्रह उपासना अर्थात् सोऽहम् भावना श्रेष्ठ है पर यह सोऽहम् भावना अभ्यास द्वारा सिद्ध होने से अनित्य ही है । क्योंकि यह सदा नहीं रहती है यह सूक्ष्म क्रिया है । जब यह सूक्ष्म क्रिया भी शान्त हो जाती है, उस अवस्था को सहजावस्था कहते हैं । स्वयं प्रकाश आत्म स्वरूप में निष्ठा प्राप्त करने को ही

सहजावस्था कहते हैं। सोऽहम् भावना उत्तम है परन्तु सर्वोत्तम नहीं, पवित्र है पर परम पवित्र नहीं । मार्ग है, मन्जिल नहीं । साधन है, किन्तु साध्य नहीं । आत्मनिष्ठा ही आत्मसाक्षात्कार है ।

जिस प्रकार नाटक में भाग लेने वाला ब्राह्मण किसी चोर, हत्यारे, शुद्र का अभिनय करने पर भी वह अपने को ब्राह्मण ही जानता है इसी प्रकार ज्ञानी सांसारिक कार्य करते हुए, अपने को आत्मा ही जानता रहता है ।

■■■

‘ही’ नहीं ‘भी’ में रहो

व्यावहारिक जीवन में ‘ही’ को हटाकर ‘भी’ को लाओ । किसी व्यक्ति या वस्तु में ‘ही’ शब्द का प्रयोग न कर ‘भी’ शब्द का प्रयोग करे । यदि आप ‘भी’ को स्वीकार करेंगे तो उस पदार्थ या व्यक्ति की सत्ता को मान्यता देंगे,उसके अस्तित्व को उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकार करेंगे । ‘ही’ शब्द का प्रयोग न करे तो ९५% समस्या हल हो जाती है । द्वन्द्व, विरोधाभास, अहंकार, वैर समाप्त हो जाता है ।

‘ही’ में संकीर्णता है अहंकार है, स्वामित्व भाव है । जैसे यह मेरी सम्पत्ति है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी गाड़ी है, यह मेरा ही मकान है। तो ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि ऐसा कहकर उसकी स्वतन्त्रता को आपने अपने कैद में डाल दिया । जैसे ‘यह मेरा’ कह दिया तो अब उस पर किसी अन्य का अधिकार नहीं रहा मेरा कहने का । यदि आप कहें कि यह मेरी पत्नी भी है तो वह किसी की बेटी भी है, किसी की मां भी है, किसी की साली भी है, किसी की सास भी है, किसी की शिष्या भी है किसी की मित्र भी है ।

मेरी कह कर आप उसे बन्धन में डाल देते हैं उसकी स्वतन्त्रता को कैद करते हैं, उसके व्यक्तित्व की हत्या करते हैं, उसके प्रति अन्याय, कठोरता का व्यवहार करते हैं । इसी प्रकार मेरी सम्पत्ति न कह कर मेरी भी सम्पत्ति है क्योंकि उस सम्पत्ति पर बेटा-बाप, भाई-बहन, मां-बेटी सबका अधिकार है । सरकार का तो पूरा अधिकार है ।

जैसे परमात्मा मुझमें ही हैं, मन्दिर में ही हैं, तीर्थ में ही हैं, वैकुण्ठ में ही हैं ऐसा न कह कर मुझ में भी है, तुझ में भी है, मूर्त्ति में भी है, मन्दिर में भी है, तीर्थ में भी है, स्वर्गादि लोक में भी है, मस्जिद में भी है, चर्च में भी है, ऐसा कहने से किसी का विरोध नहीं किन्तु 'हृदय में ही हैं' ऐसा कहा तो परमात्मा की अखण्डता को कैद में रख खण्ड कर दिया ऐसा कहा जायगा ।

प्रत्येक त्रिपुटी द्रष्टा में आकर पूर्ण होती है । द्रष्टा के बिना कोई भी त्रिपुटी पूरी नहीं होती है । मन, बुद्धि, चित्त अहंकार यह चार अन्तःकरण की वृत्तियाँ है । श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रियाँ है तथा वाक्, पाणि, पाद, लिंग, गुदा यह पांच कर्मेन्दियाँ, चौदह इन्द्रिय तथा इनके विषय व इनके देव मिलाकर यह चौदह त्रिपुटियों द्वारा जाग्रत अवस्था में कार्य होता है ।

पटुता, मन्दता, अन्धता यह इन्द्रियों के तीन स्वभाव है । ठीक काम करना, कम काम करना तथा बिलकुल काम न करना, यह इन्द्रियों की प्रकृत्ति सब के अनुभव में प्रकट है । सभी त्रिपुटी द्रष्टा में आकर सफल होती है जैसे –

शब्द के साथ जानामि, मनके साथ जानामि, स्पर्श के साथ जानामि, रूप के साथ जानामि, गन्ध के साथ जानामि, रसके साथ जानामि, बुद्धि के साथ जानामि क्रिया का प्रयोग किया जाता है ।

प्रायः साधक इन्द्रियों के पास ही रूक जाते हैं । आगे बढ़ते हैं तो मन के पास रूक जाते हैं किन्तु मन के पास चैतन्यता कहाँ से आई ? यह विचारे तो मालुम होगा हृदय से आई । हृदय का केन्द्र आत्मा है इसीलिये परमात्मा हृदय में विराजित है । हृदय में ही साक्षात्कार होता है ।

जैसे बिजली की शक्ति टी.वी., रेडिओ, पंखा, कूलर, बल्ब, हीटर, मोटर द्वारा होने वाली क्रियाके रूप में प्रकट होती है । इसी तरह श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, रसके रूप में वाणी, हाथ, पैर, लिंगादि के क्रिया के रूप में तथा मन,बुद्धि, चित्त अहंकार के क्रिया के रूप में परमात्मा ही एक मात्र सत्ता रूप में (अर्थात् निराकार ही साकार क्रिया रूप में) प्रकट हो रहा है । वही मैं हूँ ।

अहिंसा परमधर्म

उत्तम पूजा उसकी जानो, जो प्रेम सभी से करता है ।
छोटे बड़े सब जीवोको, जो अपनी तरह समझता है ।।

वह परमपिता हम सबको बड़े प्रेम से पालता है ।
हर जीवों में उसको जानो, जैसा हममें रहता है ।।

जो असुर प्रकृति के लोग कच्चा या पका कर मांस खाते हैं, गर्भ को नष्ट करते हैं परमात्मा उन हत्यारों को यहाँ से शत्रु द्वारा या हिंसक पशु द्वारा मरवाकर ८४ लाख योनियों में भटकाते हैं । वह फिर मनुष्य होकर किसी जीव को मार कर खाता है तो वह अपने पिछले जन्म के कर्म फल भोग रहे अपने ही पिता, माता, पुत्र, गुरु आदि का पशु पक्षी योनियों से मांस खा रहा है । (– अथर्ववेद ८/६/२३)

सन्त मीरदाद कहते हैं जिस जीव को काट मांस खाया है उस जीव को अपना मांस देकर ही ऋण चुकाना होगा । किसी पूजा दान, धर्म, कर्म, तीर्थ, स्नान द्वारा वह ऋण चुका नहीं सकोगे । उसके खून की हर बूंद का हिसाब अपने रक्त बहा कर ही चुकाना होगा किसी भी जीव के शरीर के हाथ, पैर, आँख को नष्ट किया है तो अपने अंग कटवा कर कर्ज चुकाना होगा ।

महात्मा सरमद कहते हैं परमात्मा की चेतना हर अन्न फल पेड़ पौधे वनस्पति में गहरी निद्रा में सोई पड़ी है । पशु, पक्षी, मुर्गी, मछली,

कबुतर, तोते चील आदि में वह चेतन अर्ध निद्रा में है । मनुष्य में वह चैतन्यता पूर्ण जाग्रत अवस्था में आ गई है । इसलिये सामान्य चेतन अन्न, जल, फल, दूध, दही, सब्जी, भाजी को मानव अपना भोजन बनावे । विशेष चेतन पशु पक्षी मनुष्य को अपना आहार न बनावे ।

हजरत मोहम्मद ने निर्दोष पशु, पक्षी पर होने वाले अत्याचार पर दुःख प्रकट करते हुए कहा कि किसी भी जीव जन्तु को कष्ट देना उन्हें मानसिक पीड़ा या शारीरिक पीड़ा देना जैसे सर्कस में, चिड़ियाघर में, पिंजरे में बन्द रखना, सांप, बन्दर, भालू को मार मार जीवन निर्वाह का साधन बनाना बहुत बड़ा गुनाह है । इस्लाम तो पेड़ पौधों को काटना भी जुल्म बताता है ।

यदि कोई इन्सान बेगुनाह चिड़िया तक को भी मारता है तो उसे खुदा को इसका जवाब देना होगा कि बता तूने इस बेजुबा, बेकसुर जीव को क्यों मारा ? यदि कोई मुसल्मान या हिन्दु किसी पक्षी पर दया कर उसकी जान बख्शता है तो अल्लाह उस पर कयामत के दिन रहम करेगा । (– हजरत मोहम्मद, इमाम साहब ९८)

इस्लाम के सूफी सन्तों ने सात्विक आहार अपने जीवन में अपनाया पर मांस का सेवन नहीं कबूल किया । उनका कहना था कि यदि तू बहिशात में निवास करना चाहता है तो खुदा की सृष्टि अर्थात् अन्य जीवों पर दया कर हमदर्दी का व्यवहार कर ।

शेख इस्माइल, ख्वाजा, मीरदाद, हजरत निजामुद्दीन, शाह अब्दुल, करीम, शाह इनायत, शाह कलन्दर, चिश्ती, सभी मांस खाना गुनाह समझते थे ।

जीव हत्या नहीं करेंगे व अपने पड़ौसी से प्यार करो यही दो इसा–मसीहा की शिक्षा है ।

THOU SHALL NOT KILL

LOVE THY NEIGHBOUR

जो हत्या करता है वह अपनी आत्मा की ही हत्या करता है । जो पशु मारकर मांस खा रहा है वह अपना ही मांस खा रहा है । जानवरों की मौत अपनी ही मौत है । बे–जुबान की हत्या न करो, निरीह पशुओं को मार मांस न खाओ । यदि खाओगे तो तुम्हे शेतान का गुलाम होना पड़ेगा । जीवन से ही जीवन का बदला चुकाना होगा । जीवन से ही किसी को जीवन मिलता है ।

■■■

आत्मसिद्धि विचार द्वारा

शास्त्र बाहर है, आत्मा भीतर है । शास्त्रों में ही उलझा रहने वाला बहिर्मुखी अन्दर स्थित आत्मा का अनुभव नहीं कर सकेगा । शास्त्र यदि अपने से हटा पाठक को अपने शरीर के भीतर स्थित आत्मा की खबर दे दे तो शास्त्र सार्थक है और अधिक पढ़ने की जरूरत नहीं । पढ़ते ही रहोगे, प्रवचन सुनते ही रहोगे तो पढ़े सुने स्वात्म तत्त्व का अनुभव फिर किस जन्म में करोगे ? यदि शास्त्र प्रवचन तुम्हारे भीतर की तरफ दृष्टि न लौटा सके, भीतर की खबर न दे तो शास्त्र फिर क्यों पढ़े ?

मन को आत्मा में विलय करना ही ज्ञान है । आत्मा में मन का लीन होना ही समाधि है । इसी को आत्म दर्शन, आत्म साक्षात्कार, ब्राह्मी स्थिति कहते हैं ।

जैसे कचरा फेंकने के समय कचरे का वजन नहीं किया जाता कि उसमें क्या-क्या जा रहा है, यह नहीं देखा जाता । मल त्याग करते समय कैसा रंग, कैसी गन्ध, कितना वजन नहीं देखा, सूंघा, तोला जाता है । इसी प्रकार मूल आत्म स्वरूप का बोध हो जाने पर आत्मा को आच्छादित करने वाले कोशों का, पंचभूतों का, त्रिपुटियों की गणना करने में समय नष्ट नहीं करना चाहिये । फिर उन्हें रटने की, याद रखने की जरूरत नहीं है उन्हें तो असार जान भुलादेना चाहिये न कि उनको मन में बिठा रखना चाहिये ।

मन को हृदय में स्थित रखना आत्मानुसंधान है तथा मैं आत्मा हूँ ऐसा विचार करना ध्यान है ।

क्रिया से भावना श्रेष्ठ है एवं भावना से तत्त्व साक्षात्कार में आत्मविचार ही परमात्मानुभूति का एक मात्र साधन माना गया है ।

'वस्तु सिद्धि विचारेण' 'नेदम् यदिदमुपासते' – केन उप.

यह ब्रह्म नहीं जिसकी लोग आंख, कान, वाणी, प्राण, मन, बुद्धि का विषय समझ कर उपासना करते है, वह परमात्मा इन्द्रियों का विषय नहीं है । परमात्मा दृश्य नहीं द्रष्टा है, जड़ नहीं चेतन है ।

यदि यही सिद्धान्त मानलिया जाय तो फिर हम अद्वैत का ही खण्डन कर द्वैत की ही स्थापना कर रहे हैं कि फिर यह दृश्य, जड़ कौन है ? परमात्मा तो अपरिच्छिन्न, व्यापक एक अखण्ड सत्ता का नाम है । इसलिये यहाँ चराचर सब एकमात्र ब्रह्म ही है । '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' । लेकिन प्रारम्भिक अवस्था में साधक को परिवर्तनशील पदार्थ से सत्य बुद्धि का त्याग न सिखाया जाय, तो फिर वह उसी नाश रूप पदार्थ में ही सत्य बुद्धि कर अटक जायगा व परिणाम में उस पदार्थ के नाश से फिर दुःखी हो जावेगा ।

अतः मुमुक्षु को विवेक, वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरामता, मुमुक्षुता सहित सद्गुरू की शरण ग्रहण कर वेद के महावाक्य का श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा जीव ब्रह्म में कल्पित भेदों की निवृत्ति कर अपने ब्रह्म स्वरूप में दृढ़ निष्ठा करना ही सब शास्त्रों का एक मात्र प्रयोजन है ।

यदि उसे प्रथम ही दृश्य में ब्रह्मता का उपदेश कर दिया जायगा तो वह कर्म, उपासना की उपयोगिता भी नहीं समझेगा जिसके अभाव में उसका मल विक्षेप दोष दूर नहीं हो सकेगा और न वह ब्रह्मज्ञान उपदेश का अधिकारी हो सकेगा । अतः एक अनन्त अखण्ड ब्रह्मसत्ता का अनुभव कराने के लिये सर्वप्रथम इन अनात्म पदार्थों से मन को हटाना ही पड़ेगा । इसी उद्देश्य से उसे, कहा जाता है ''नेदम् यदिदमुपासते'। – केन उप.

सोऽहम् ब्रह्म, सोऽहम् विष्णु, सोऽहम् शंकर, सोऽहम् –

उपनिषदसार से

भजन

इस काया का होता विनाश है ।
तु तो साक्षी स्वयं प्रकाश है ।।0।।

पंचभूत का तन विस्तारा
तु तो द्रष्टा है जानन हारा
तेरा कण कण में रहता निवास है
तु तो साक्षी स्वयं प्रकाश है ।१।।
जैसे गहनों में सोना है पाया
तैसे घट घट में तुहि समाया
जग तेरा ही लीला विलास है
तु तो साक्षी स्वयं प्रकाश है ।२।।

जाल जल्दी ये सपने की माया
आपको भूल क्यों भरमाया
स्वामी होके बना क्युँ दास रे
तु तो साक्षी स्वयं प्रकाश है ।३।।

भूल तेरी है तु ही मिटादे
पूर्ण ब्रह्म ये निश्चय जमाले
मिटे जन्म-मरण कि त्रास है
तु तो साक्षी स्वयं प्रकाश है ।४।।

इस काया का होता विनाश है
तु तो साक्षी स्वयं प्रकाश है ।।

भजन

मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया   मैं तो हूँ तेरे पास में ।

नहीं तीरथ में नहीं मन्दिर में,   नहीं एकान्त निवास में ।
नहीं सूरज में नहीं चन्दा में,   नहीं पर्वत कैलाश में ।।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया   मैं तो हूँ तेरे पास में ।।१ ।।

नहीं वृन्दावन नहीं अयोध्या,   नहीं स्वर्ग वैकुण्ठ में ।
नहीं राम में नहीं कृष्ण में,   नहीं भूमि आकाश में ।।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया   मैं तो हूँ तेरे पास में ।।२ ।।

नहीं वेश में नहीं केश में,   नहीं सन्यास वैराग्य में ।
नहीं गंगा में नहीं यमुना में,   नहीं त्रीवेणी स्नान में ।।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया   मैं तो हूँ तेरे पास में ।।३ ।।

ना मैं जप में ना मैं तप में,   ना मैं व्रत उपवास में ।
नहीं पूजन में नहीं ध्यान में,   सब श्वासों के साथ में ।।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया   मैं तो हूँ तेरे साथ में ।।४ ।।

खोजी होय तुरत मिल जाऊं,   सोऽहम् के विचार में ।
कहत निरन्जन सुनो मेरे भैया,   मैं हूँ साक्षी रूप में ।
मैं हूँ द्रष्टा रूप में ।
मैं हूँ आत्मा रूप में ।
मैं हूँ चेतन रूप में ।

मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया   मैं हूँ मैं के रूप में ।।
मैं तो हूँ सब रूप में ।

स्वामी निरंजन रचित ग्रंथावली

१. ज्ञानोदय
२. शान्तिपुष्प
३. भूली बिसरी स्मृति
४. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-१
५. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-२
६. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-३
७. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-४
८. मैं अमृत का सागर
९. मैं ब्रह्म हूँ
१०. प्राणायाम,मुद्रा, ध्यान एवं वेदान्त पारिभाषिक शब्दकोश
११. सीता गीता
१२. राम गीता
१३. गुरु गीता
१४. पंचदशी प्रश्नोत्तर दीपिका
१५. भागवत रहस्य
१६. आत्म साक्षात्कार
१७. मन की जाने राम
१८. योग वशिष्ठ सार
१९. निरंजन भजनामृत सरिता
२०. स्वरूप चिन्तन
२१. कर्म से मोक्ष नहीं
२२. श्रद्धा की प्रतिमा सद्‌गुरु
२३. अमृत बिन्दु
२४. उपनिषद् सिद्धान्त एवं वेदान्त रत्नावली
२५. सहज समाधि
२६. ज्ञान ज्योति
२७. कबीर साखी संकलन
२८. सहज ध्यान
२९. हे राम ! उठो जागो
३०. सद्‌गुरु कौन ?
३१. श्रीराम चिन्तन
३२. तत्त्वमसि
३३. साक्षी की खोज
३४. आत्मज्ञान के हीरे मोती
३५. अनमोल वचनामृत
३६. लाख रोगों की एक दवा
३७. हंस गीता
३८. आत्मज्ञान के लिये उपयोगी चित्रावली
३९. अष्टावक्र गीता सार
४०. अष्टाबक्र महागीता
४१. आत्म गीता (भगवद् गीता सार)
४२. शिव गिता सार
४३. आत्म प्रबोधक संहिता

(उडिआ भाषा में) :

१. मुँ अमृतर सागर
२. मुँ ही ब्रह्म
३. मन कथा जाणे राम
४. सीता गीता
५. आत्म साक्षात्कार
६. वेदान्त शब्दकोष...
७. अमुल्य वचनामृत
८. सहज समाधी
९. सहज ध्यान
१०. हंस गीता
११. श्रीराम चिन्तन
१२. लक्षे रोगर गोटिए औषध
१३. निरंजन महाभागवत
१४. आत्म गीता (भगवद् गीता सार)

(मराठी भाषा में) :

१. होय ! मी ब्रह्म आहे

पूज्य स्वामीजी के अमृत प्रवचन तथा आत्मज्ञान पर आधारित भजन का कैसेट एवं सि.डि उपलब्ध है

Visit us at : www.niranjanmission.org

अधिक जानकारी तथा ग्रन्थ प्राप्ति के लिये सम्पर्क करें :
प्लट नं : **58/60**, दिव्य विहार, सामन्तरायपुर, भुवनेश्वर-2 (उड़िशा)
फोन नं : **(0674) 2340136, 9437006566**